श्रीमते विष्वक्सेनाय नमः।
श्रीहयग्रीवाय नमः।
श्रीमते रामानुजाय नमः।

भूमिका।

मरूव-गया निवासी पण्डित मैथिलीशरण पाण्डेय नामक एक सज्जनने "रहस्योद्घाटन" नामक एक छोटासा पुस्तक अभी प्रकाशित किया है। उसमें उन्होंने, श्रीरामानुजसम्प्रदाय के आचार्योंके प्रति, श्रीरामानन्द शाखीय श्रीवैष्णवों के हृदयोंमे, दुर्भाव उत्पन्न करानेका नानाप्रकारसे उद्योग किया है। श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्योंके ग्रन्थोंमें श्रीराममन्त्र की अवहेलना की गई है, श्रीरामचन्द्र भगवान की निन्दा की गई है, श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्य श्रीराममन्त्र का उपदेश नहीं करते, इत्यादि इत्यादि बातें कह कर, उक्त पुस्तककारने, श्रीरामानन्दीय वैष्णवों को, श्रीरामानुजसम्प्रदाय परम्परा छोडकर अलग हो जाने का उपदेश किया है। इस पुस्तक के पढनेवालों के हृदयोंमे अवश्य ही नानाप्रकारके तर्क वितर्क उत्पन्न हो सक्ते हैं, अतएव उस पुस्तकमें जो कुछ लिखा है, उसकी असारता दिखा देना परम आवश्यक मालुम होता है। यद्यपि पुस्तककार ने, श्रीरामानुज सम्प्रदाय विद्वेषके कारणही इसको लिखा है, उनका यह भाव उक्त पुस्तकके पढनेवाले निष्पक्षपाती पुरुषोंको ज्ञात

हुए विना नही रह सकता, अतएवच पुस्तककारने श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्योंके प्रति कुत्सित शब्दोंका प्रयोग बहुस्थलोंमे किया है, परंतु हम उन शब्दोंकी तरफ दृष्टि देना नहीं चाहते, इतनाही हम बताना चाहते हैं कि उक्त पुस्तकमें जो कुछ लिखा गया है, उसमे सत्यांश कुछ नही है, सत्य तो कुछ और ही है। श्रीरामानन्दीय वैष्णवगण सावधानीसे इसका पढें, और अपना कर्तव्य ठीक करें। इति।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीरामानन्दीय वैष्णवोंको हितोपदेश।
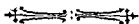
श्रीरामानन्दीय वैष्णवों!

आज तुम्हारे सामने एक विकट प्रश्न उपस्थित हुआ है, तुम लोग कुछ सावधान और निष्पक्षपात हो कर अपने हितका निर्धारण करो। तुम्हारे सामने तुम्हारे अहित चाहनेवाले नाना प्रकारकी भ्रामक प्रलोभन सामग्रियां ला-ला कर उपस्थित कर रहे है, उन भ्रामक वाग्जालों मे पड कर अनर्थकारी सिद्धान्त पर आरुढ नहीं हो जाना।

आज तुम्हारे सामने यह प्रश्न उपस्थित है कि चिरकाल से तुम जिनको आचार्य मानते चले आ रहे हो, जिन को तुम्हारे पूर्वजों ने गुरु माना है, उन ही श्रीरामानुज स्वामीजी प्रभृति सत्सम्प्रदाय के आचार्यों का परित्याग किया जाय या नही? इस बात को तुम सबसे पहले विचार लो कि आज तुम उन सदाचार्यों का परित्याग कर भी दो तो उन को कोई हानि नहीं है। यह कुछ व्यक्तिगत क्षुद्र विषय नहीं है। यह है सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखनेवाला प्रश्न, और यह है परलोक से सम्बन्ध रखनेवाला प्रश्न! याद रहे, तुम श्रीरामानुज स्वामीजीका सम्बन्ध छोडने के पश्चात् किसी सम्प्रदाय

के नहीं रहोगे ! यह कुछ ठठेबाजी की बात नहीं है, खेलतमाशे की बात नहीं है । वह जो आशामोदक दिखाया जा रहा है कि श्रीरामानन्द ही श्रीसम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं, श्रीरामानुज स्वामीजी नहीं; सोचो, यह दलील कितनी देर टिक सकेगा ! श्रीरामानुज सम्प्रदाय कुछ श्रीरामानन्दीयों के भरोसे ही संसार में नहीं है । इस सम्प्रदाय के अवलम्बी लाखों नहीं, क्रोडों हैं । सब से पहले तुम उसी बात पर दृष्टि डालो कि तुम किस सम्प्रदाय के हो, और वह सम्प्रदाय किन का है ! पश्चात तुम उधर कान दो कि तुम्हारी निन्दा और तुम्हारे मन्त्र की निन्दा तथा तुम्हारे आराध्य देवकी निन्दा क्या किसी ने की है ? हम सत्य कह रखते हैं कि श्रीरामानुज सम्प्रदाय के आचार्य कभी ऐसा भूल नहीं कर सकते कि किसीकी निन्दा वे करें । यदि तुम इस बात का निश्चय कर लोगे कि तुम्हारे आचार्य श्रीरामानुज हैं, फिर तो तुम चाहे कोई तुम्हारी निन्दा करे या स्तुति, गुरुपरित्यागरूपी पाप की तरफ कदापि अग्रसर न होओ ।

वैष्णवों ! गुरु परित्याग सामान्य पाप नहीं है । देखोः—

" गुरोरपह्नवात्त्यागात्साम्याद्विस्मरणापि ।
लोभमोहादिभिश्चान्यैरपचारैर्विनश्यति ॥"

भरद्वाज संहिता अ. ४ ।

———

श्रीरामानन्दीय वैष्णवोंकी गुरुपरम्परा.

उत्तर भारत में वैष्णव सम्प्रदाय चार ही चिरकालसे प्रचलित है। उन चारों सम्प्रदायों के नाम-श्रीरामानुज सम्प्रदाय, श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय, श्रीमाध्व सम्प्रदाय, श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय—इस प्रकार से कहे जाते हैं। ये नाम उन आचार्यों के नामसे प्रचलित हुए हैं, जिन्हों ने सम्प्रदायोंका विशेषरूपसे प्रवर्तन किया है। इन सम्प्रदायोंके मूल प्रवर्तक श्रीमहालक्ष्मीजी, श्रीरुद्र, श्रीसनक, श्रीब्रह्माजी इस प्रकार कहे जाते है।

श्रीरामानन्दीय वैष्णवोंके आचार्योंमेंसे श्रीनाभाजीने भक्त माल ग्रन्थमें इसी प्रकार वर्णन किया है।

चौबीस प्रथम हरिवपुधरे,
त्यों चतुर्व्यूह कलियुग प्रकट।
श्रीरामानुज उदार,
सुधानिधि अवनि कल्पतरु।
विष्णु स्वामी बोहित्थ,
सिन्धु संसार पार करु।
मध्वाचारज मेघ,
भक्ति सर ऊसर भरियां।
निम्बादित्य आदित्य,
कुहर अज्ञानजु हरिया।

जनम करम भागवत धरम,
सम्प्रदाय थापी अघट ।
चौवीस प्रथम हरि वपुधरे,
त्यों चतुर्व्यूह कलियुग प्रगट ॥ २४ ॥

इस छप्पयमें जैसे हरिनें प्रथम चौवीस रूप धारण किया था, वैसेही कलियुगमें चतुर्व्यूह रूप धारण किया -कहकर, फिर उन चारों अवतारोंके नाम–श्रीरामानुज, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य और निम्बार्क बताकर, अन्तमें (सम्प्रदाय थापी) उन्ही आचार्योंको सम्प्रदायस्थापक बताया है । उसके आगे–

रमापद्धति रामानुज,
विष्णु स्वामि त्रिपुरारि ।
निम्बादित्य सनकादिका,
मधुकर गुरु मुख चारि ॥ ५ ॥

इस दोहेमे उन चारों आचार्योंके स्थापना किये हुए सम्प्रदायोंके नामोंके साथ उन आचार्योंके नाम भी बताये गये है ।

उपर उदाहृत भक्तमालके छप्पय और दोहेसे यह तो निश्चय होही गयाकि श्रीसम्प्रदायके आचार्य श्रीरामानुज हैं । तब यदि श्रीरामानन्दीय वैष्णव अपनेको श्रीसम्प्रदायावलम्बी मानते हों तो, उनकी गुरुपरम्परामे श्रीरामानुज अवश्य ही आवेंगे । श्रीरामानुजके विना श्रीसम्प्रदाय नही । श्रीरा-

नन्दीय वैष्णव जब अन्य तीन सम्प्रदायके नहीं है, तो अवश्य ही उनको श्रीसम्प्रदाय मानना पडेगा ।

श्रीरामानन्द प्रणीत श्रीरामानन्दीय वैष्णव मताब्ज भास्कर नामक ग्रन्थ मे आरम्भ मेही श्रीरामानन्दस्वामीने श्रीरामानुज यतिराजका प्रणाम मङ्गलरूपमे किया है । उस ग्रन्थके पांचवें श्लोकका उत्तरार्ध इस प्रकार है--

" आचार्याचार्यवर्यान् यतिपतिसहितान्प्रोक्तवांस्तत्प्रणम्य श्रीमांस्तस्मै रमेशं शरण मुपगतस्तद्विजिज्ञासु मुख्यः " ॥

इसमे " यतिपति " शब्द श्रीरामानुज स्वामीजीका नाम है । निरुपपद " यतिपति " " यतिराज " आदि शब्द जैसे श्रीरामानुज स्वामीजीके विषयमे प्रयुक्त होते है, वैसे अन्योंके विषयमे नही होते । श्रीरामानुजाष्टोत्तरशत नामोंमे यतिराज नामभी पठित है । "यतिराजविंशति" " यतिराज सप्तति " इत्यादि ग्रन्थोंके नामोंमे केवल यतिराज शब्द प्रयुक्त होता है । श्रीरामानुज स्वामीजीके प्रति ग्रन्थारम्भमे प्रणाम करते हुए श्रीरामानन्दजीने यह स्पष्ट बता दिया है कि श्रीरामानुज स्वामीजी उनके पूर्वाचार्योंमे अन्तर्गत है । यही नहीं, "प्राचार्याचार्य वर्यान्यतिपति सहितान्" इस प्रकार यतिपतिको आचार्योंके साथ पढा है । यह स्पष्टकथन है । यही नहीं ।

" शक्तैः श्रीभाष्यतश्च द्रविडमुनिकृतोत्कृष्टदिव्य

प्रबन्धैः कालक्षेपो विधेयः सुविजित करणैः स्वाकृते-र्यावदन्तम् " ॥ १६८ ॥

इस १६८ के श्लोकमे श्रीरामानन्दीय वैष्णवोंको यावज्जीव श्रीभाष्य और द्राविड प्रबन्धोंसे कालक्षेप कर्तव्य बताकर, श्रीरामानन्दस्वामीजीने यह स्पष्टही बता दिया है कि उनका सम्प्रदाय श्रीरामानुज सम्प्रदायही है। श्रीभगवद्रामानुज प्रणीत श्रीभाष्य और श्रीशठकोपादि प्रणीत द्राविड प्रबन्ध श्रीरामानुज सम्प्रदायको छोडकर और किस सम्प्रदायमे है ?

" स्नानादि कर्माणि विधाय तत्र
श्रीभाष्यमेवं शृणुया दशक्तः। " ॥१६९॥

इस १६९ वें श्लोकके पूर्वार्धमेभी श्रीरामानन्दीयोंको श्रीभाष्य श्रवणका विधान किया है।

" तथाप्यशक्तास्तु कुटीरमात्रं
विधाय कुर्युस्त्वथ यादवाद्रौ " ॥ १७१ ॥

१७१ वें श्लोकके पूर्वार्धमे श्रीयादवाद्रिवासका विधान करते हुए श्रीरामानन्द स्वामीजी श्रीरामानुज भगवानके अन्तिम कालकी उक्तियोंका ही स्मरण करा रहे हैं।

" सत्सङ्गतःमन् हि गतस्पृहो मुहुः
श्रीमं मपघाय गुरोर्मुखादसौ " ॥ १८१ ॥

इस श्लोकसे लेकर जो बातें कह रहे है, वह सब—

" सत्सङ्गाद्भवनिस्स्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं
मपद्यात्मवान् "

इत्यादि श्रीरामानुज सम्प्रदायके श्लोकमे कही हुई बातें ही हैं। उपर कही हुई बातोंको निष्पक्षपात होकर विचार करनेपर श्रीरामानन्द स्वामीजी श्रीरामानुज सम्प्रदायावलम्बी थे और श्रीरामानुज स्वामीजी को आचार्य मानते थे, यह निश्चित मालुम हो जायगा।

श्रीनाभाजीने " रमापद्धति रामानुज " इस दोहेके पश्चात्‌ही " सम्प्रदायशिरोमणि सिन्धुजा " इस छप्पयमे श्रीविष्वक्सेनजीसे लेकर श्रीरामानुज स्वामीजी तक सबही आचार्योंके नामोंका उल्लेख किया है। इस बीचमे जो बोपदेवजीका नामभी आया है, वह स्यात् उपकार स्मृतिके वास्ते लिया गया हो। इस छप्पय के अनन्तर " सहस्र आस्य उपदेश करि " इस छप्पयमे श्रीरामानुजस्वामीजीका ही महिमा गाया है। उसके परचात् " चतुर महंत दिग्गज चतुर " इस छप्पयंम चार रामानुज गुरुबन्धुओं का जिकर किया है। उस के अनन्तर " आचारज जामात की " इस छप्पय मे श्रीवरवर मुनि स्वामीजी का वृत्तान्त है। उस के अनन्तर " श्रीमारग उपदेश कृत " इस छप्पय मे श्री सम्प्रदाय के पादपद्म जी नामक एक भक्त का वर्णन है। तदनन्तर " श्रीरामानुज पद्धति प्रताप " इस छप्पय मे श्रीदेवा-

चार्यजी हरियानन्दजी राघवानन्दजी और रामानन्दजी, इस प्रकार श्रीवरवर मुनिस्वामीजी के पश्चात् श्रीरामानन्दजी तक चार आचार्यों के नाम बताये गये हैं। उसके पश्चात "श्रीरामानन्द रघुनाथ ज्यों" इस छप्पय मे श्रीरामानन्दजीके बारह शिष्य अनन्तानन्दजी प्रभृतिका वर्णन हुआ। अनन्तर "अनन्तानन्द पद परशिकै" इस छप्पय मे अनन्तानन्दजीके आठ शिष्य योगानन्द प्रभृतिका वर्णन है। उन्ही मे एक पयहारी कृष्णदासजी है। उसके पश्चात् "निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास" इस छप्पय मे पयहारी कृष्णदासजीका वर्णन है। अनन्तर "पैहारी परसाद ते" इस छप्पय मे पयहारीजी के शिष्यों के नाम हैं। उन्ही शिष्यों मे एक श्री अग्र देवजी है। उस के पश्चात् "श्रीअग्रदास हरि भजन-बिन" इस छप्पय मे श्री अग्रदासजीका वर्णन है। येही अग्रदासजी श्रीनाभाजीके आचार्य थे, अतएव यहीं तक श्रीरामानुज सम्प्रदाय वा श्रीसम्प्रदाय की परम्परा का वर्णन भक्त मालमे किया गया है। इसके आगे श्रीशङ्कराचार्यजीका वृत्तान्त है। इस सिल सिलेवार वर्णन से निष्पक्षपाती पुरुषों को यह बात स्पष्ट ही मालुम हो जाती है कि श्रीरामानुजसम्प्रदाय की गुरुपरम्परामे श्रीवरवर मुनिस्वामीजी के पश्चात् हीं श्रीदेवाचार्यजी श्रीहरियानन्दजी श्रीराघवानन्दजी श्रीरामानन्दजी इस प्रकार श्रीरामा-

नन्दीय वैष्णवों की गुरुपरम्परा है। श्रीनाभाजीने भक्तमाल मे " रमापद्धति रामानुज " इस दोहे मे चारों सम्प्रदायों के नाम और प्रधान आचार्यों के नाम कहने के पश्चात् केवल रमापद्धति अर्थात् श्रीसम्प्रदाय का ही सिलसिले-वार वर्णन किया है, और सम्प्रदाय का नहीं । श्रीरा-मानुज सम्प्रदाय के आचार्यों मे श्रीमहालक्ष्मीजी से लेकर श्रीरामानुज स्वामीजी तक समस्त आचार्यों के नाम क्रम बद्ध लिये गये है। बीच मे बोपदेवजी का नाम लेनेपर भी, उनका नाम उपकार स्मृतिसे लिया गया है—यह बात " बोपदेव भागवत लुप्त उधर्‌यो नवनीता " इन शब्दों मे दर्शा दी गई है। श्रीरामानुजस्वामीजीके पश्चात श्रीवर-वर मुनि स्वामीजी का वर्णन कर, फिर देवाचार्य से लेकर अग्रदासजी तक क्रम से नाम लिये गये है। इतना होने-पर भी किसी को सन्देह रहे! तो आश्चर्य की बात होगी।

गुरुपरम्परा पर शङ्का और समाधान।

रहस्योद्‌घाटन कार का कहना है कि भक्तमाल के "सम्प्रदाय शिरोमणि सिन्धुजा रच्यो भक्तिवितान" इस छप्पयमें क्रमबद्ध परम्परा नहीं है, ठीक, कोई हानि नहीं है। सम्प्रदाय चार हैं, उनमें श्रीसम्प्रदायके आचार्य श्रीरामानुज स्वामीजी हैं, यह बात जब भक्तमालमें श्रीनाभाजीने स्पष्ट कह दिया है, तब क्रमबद्ध परम्परा वे न भी कहें तो क्या हानि है? क्यों कि श्रीरामानुज सम्प्रदायकी गुरुपरम्परा छिपी हुई नहीं है, क्रोडों मनुष्य उस परम्परा को जानते हैं। हां, यदि वे उन आचार्योंके नाम, जो श्रीरामानन्दजीके पहले हो चुके हैं, न बताते तो, अवश्य ही यह संशय उत्पन्न हो सकता था कि जगत्प्रसिद्ध श्रीरामानुज सम्प्रदायकी परम्परा में कहांसे श्रीरामानन्दजीकी परम्परा फटती है, श्रीवरवरमुनिस्वामीजी के नामोल्लेख कर देनेसे यह सन्देह दूर होगया। यह भी निश्चय हो गया कि श्री वरवर मुनिस्वामीजी के पश्चात् श्रीदेवाचार्यजी, श्रीहर्यानन्दजी, श्रीराघवानन्दजी, श्रीरामानन्दजी—यही परम्पराका क्रम है। अतएव श्रीशठकोपस्वामीजी श्रीमन्नाथमुनिजी और श्रीबोपदेव इनके स्थितिकालके पौर्वापर्यके विषयकी शङ्का निस्सार है।

रहस्योद्घाटनकारका यह कहना कि भक्तमालके

"श्रीरामानुज पद्धतिप्रताप अवनि अमृत है अनुसरचो ।
देवाचारज दुतिय महामहिमा हरियानन्द । "

इस छप्पयमे " देवचारज दुतिय " इस प्रकार दुतिय शब्द जो पडा है, उसका आशय यह है कि देवाचारज दूसरी परम्पराके महात्मा हुए है । यहां पर विचार करने पर यह मालुम होता है कि यह दुतिय शब्द हरियानन्दके विशेषण है । श्रीवरवर मुनिस्वामीजी तक जो प्रधान आचार्य परम्परा चली आई थी वह वरवर मुनिस्वामीजीके पश्चात् विभक्त होगई । उस विभक्त शाखामे प्रथम देवानन्दजी और द्वितीय हर्यानन्द हुए, इस लिये यह द्वितीय शब्द हर्यानन्दशब्दके साथ लगाया गया है । यदि द्वितीय शब्द देवानन्द शब्दके साथ ही जोडा जाय तो भी कोई अनर्थ की बात नही है । क्योंकि श्रीवरवर मुनिस्वामीजीके पश्चात् वास्तव मेही परम्परा दो भागों मे बट गई है, एक तो दाक्षिणात्य आचार्योंकी और दूसरी रामानन्दजीकी । इस हालतमें देवाचार्य द्वितीय परम्पराके आदिम पुरुष मानें जायें तोभी क्या आपत्ति है ? मूलमे जो श्रीरामानुज स्वामीजीकी श्रीवरवरमुनि स्वामीजी पर्यन्त की परम्परा, वह तो वैसी ही रहेगी । अतएव श्रीरामानन्दीय वैष्णव श्रीरामानुज स्वामीजीकी परम्परासे किसी प्रकारभी अलग नहीं हो सक्ते ।

यहांपर एक ऐसी शङ्का की जाती है कि 'श्रीरामानन्द

स्वामीजीको हुए आज छः सौ २० वर्षके अन्दाज होते है, और वरवर मुनिस्वामीजी को हुए तो साढे पांच सौ वर्ष ही होते है, तब श्रीवरवरमुनि स्वामीजीके पीछे तीन चार पीढीके अनन्तर गुरुपरम्परामे श्रीरामानन्दजीको जोडना युक्ति सङ्गत नही। ठीक है, यदि श्रीरामानन्दस्वामीजीको हुए सवा छ. सौ वर्ष हुए-होते तो। परतु इसमे प्रमाण ही क्या है ? प्रमाण तो इसके विरुद्ध मिल रहा है। देखो, भक्तमालके कर्ता श्रीनाभाजी श्रीरामानन्दस्वामीजीके पश्चात्, (१) अनन्तानन्दजी, (२) पैहारी श्रीकृष्णदासजी, (३) श्रीअग्रदासजी, (४) श्रीनाभाजी, इस प्रकार चौथे होते है; श्रीनाभाजी विक्रमीय १७ वें शतकमे विद्यमान थे, क्यों कि श्रीनाभाजी और गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका समागम होनेका वृत्तान्त श्रीप्रियादासजीने भक्तमालकी टीकामे लिखा है। भक्तमाल छप्पय १२९ के नीचे श्रीतुलसीदासजीके चरित्रमे—

" काशी जाय वृन्दावन आय मिले नाभाजू सो
सुन्यो हो कवित्त निज रीझ मति भीजिये। "

इस कवित्त संख्या १० मे स्पष्ट है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी विक्रमीय संवत् १६३१ मे विद्यमान थे. यह बात श्रीरामचरित मानसके दोहा नं. ४४ के नीचेके निम्न लिखित चौपाईसे विदित होता है—

" सम्वत् सोरहसै एकतीसा

करौ कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमाशा
अवधपुरी यह चरित मकाशा। "

इसमे संवत् १६३१ के मधुमासके नवमी भौमवारके दिन श्रीरामचरित मानसके बनाये जानेका उल्लेख है। अब शोचना चाहिये कि बिक्रमीय सत्रहवीं शताब्दीके श्रीनाभाजीसे चारही पीढी पूर्वके श्रीरामानन्द स्वामीजी ६ सौ वर्ष पूर्व क्यों कर जायँ। श्रीवरवरमुनि स्वामीजी कालिके ४५ वें शताब्दीके है तो, उनसे पीछे श्रीदेवाचार्य, श्रीहर्यानन्द, श्रीराघवानन्द और श्रीरामानन्दजी—इस प्रकार चौथी पीढीमे होनेवाले श्रीरामानन्दजी श्रीवरवरमुनि स्वामीजीके पीछे हुए है, इसमे कोई सन्देह नही। अतएव उक्त परम्परामे कोई बाधा नही हो सकती।

श्रीमते रामानुजाय नमः।

रहस्योद्घाटनकार का पहला आक्षेप, और उसका समाधान।

रहस्योद्घाटनके कर्ताका अभीष्ट यह है कि श्रीरामानन्दीय वैष्णवगण श्रीरामानुजसम्प्रदायावलम्बी न रहकर स्वतन्त्र हो जायँ, और श्रीरामानुज सम्प्रदायसे अपने सम्प्रदायको भिन्न मानें। इस अभीष्टकी सिद्धिके लिये उन्होंने "रहस्योद्घाटन" मे सबसे पहले श्रीरामानन्दीय वैष्णवोंको यह दिखानेका यत्न किया है कि श्रीरामानुज स्वामीजी श्रीरामानन्दीयोंके आचार्योंमे नही है। क्यों नही है? इसको सिद्ध करनेके लिये उन्होंने यह युक्ति बताई है कि "श्रीराममन्त्रराज श्रीरामानुजीय परम्परा मे नही मिलता"। वे लिखते है कि "यदि श्रीरामानन्दीय वैष्णव श्रीरामानुजीय परम्परामे होते तो अवश्य श्रीराममन्त्रराज का पता उनकी परम्परामे होता"। 'श्रीरामानुजीय परम्परामे श्रीराममन्त्रराज नही मिलता' इस कथनका अभिप्राय क्या? यह हम समझ नही सके। यदि परम्परा शब्दसे गुरुपरम्परा नामक पुस्तक लिया गया हो तो, उस पुस्तकमे श्रीराममन्त्र राजका न मिलना कोई बात नही है, क्यों कि गुरुपरम्परामे मन्त्रोंके लिखनेका नियम नही है। प्रायः मन्त्र लिखे ही नहीं जाता। और उस पुस्तकमे श्रीराममन्त्र

राजका नाम न होनेसे यह सिद्ध नही हो सक्ता कि श्रीरामानुज सम्प्रदायक आचार्य उक्त मन्त्रराजको न जानते, वा उसका उपदेश न करते है । यदि गुरुपरम्परा शब्दसे गुरुओंकी परम्परा ली गई होतो उसका अर्थ यह होगा कि श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्य उक्त मन्त्रको नहीं जानते अथवा उसका उपदेश नही करते । इस पर हम यह पूछेंगे कि यह कैसे मालुम हुआ कि श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्योंमेसे कोईभी उक्त मन्त्रराज को नहीं जानते वा उसका उपदेश नहीं करते ? स्यात् वे यह समझते है कि श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्य मूलमन्त्र, द्वय, और चरम श्लोक को छोडकर, अन्य कोई मन्त्र नहीं जानते वा उपदेश करते । यदि वे ऐसाही समझते हों तो यह केवल मनमानी कल्पना मात्र है । तत्त्वार्थ ऐसा नही है । श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्य भी मूलमन्त्र, द्वयमन्त्र, और चरममन्त्र के सिवाय औरभी बहुत मन्त्र जानते व उपदेश करते हैं । ऐसा करना उनको अवर्जनीय है । ऐसा न होता तो, वे स्नान सन्ध्यावन्दन आदि कर्मही नही कर सकते; क्यों कि उन कर्मोमे बहुतसे मन्त्रों की अवश्यकता पडती है । श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्यभी अनेक भगवन्मन्त्र व परिवार देवता मन्त्रों का उपदेश लेते और देते है । परंतु कुछ मन्त्रों का ग्रहण और उपदेश तो नियत है, कुछ मन्त्रोंका नैमित्तिक है, और बाकी मन्त्रोंका

ऐच्छिक है । पञ्चसंस्कार के समयही सब मन्त्रोंका उपदेश करना चाहिये,-यहभी कोई नियम नहीं है, देशकालानुसार और आवश्यकताके अनुसार भिन्न भिन्न समयोंमे मन्त्रोंका ग्रहण और उपदेश होते हैं । यह बात सत्य है कि पञ्चसंस्कारान्तर्गत मन्त्रसंस्कारमें नियमसे मूलमन्त्र द्वयमन्त्र और श्रीकृष्णचरम श्लोकका उपदेश दिया और लिया जाता है, परंतु कभी कभी श्रीरामचरम श्लोक और श्रीवराहचरम श्लोक का भी उपदेश उस समयमें लिया और दिया जाता है । यह शिष्यकी जिज्ञासा और आचार्यकी इच्छापर निर्भर है । श्रीवैष्णवधर्मशास्त्रोंमे पञ्चसंस्कारके समय मूलमन्त्र द्वयमन्त्र और चरम श्लोकके उपदेशके साथ अन्य मन्त्रोंके उपदेश का विधान है । यथा वृद्धहारीत स्मृति के चतुर्थाध्यायमे मन्त्रसंस्कार विधि प्रकरणमे—

" अध्यापयेत्ततस्तस्मै मन्त्ररत्नं शुभाह्वयम् ।
सन्यासंच समुद्रंच सर्षिच्छन्दोधि दैवतम् ॥२३॥
सार्थमध्यापयेच्छिष्यं प्रयतं शरणागतम् ।
अष्टाक्षरं द्वादशार्णं षडर्क्षीं वैष्णवीं तथा ॥२४॥
रामकृष्णनृसिंहाख्यान्मन्त्रांस्तस्मै निवेदयेत् ।"

अर्थात् होम आदि करनेके पश्चात् शिष्यके प्रार्थना करने पर, आचार्य, शिष्यको ऋषिच्छन्दोदेवतान्यासमुद्रा दिसहित द्वयमन्त्रका सार्थ उपदेश करे, फिर अष्टाक्षर,

द्वादशाक्षर, विष्णुपडक्षर, और राममन्त्र, कृष्ण मन्त्र, तथा नृसिंहमन्त्र का भी उपदेश करे । भरद्वाजसंहितापरिशिष्ट-अध्याय २ मे मन्त्रसंस्कार प्रकरणमें—

" न्यासाख्यं परमं मन्त्रं वाचयित्वाथ बोधयेत् ।
श्रीमन्नारायणः स्वामी दासस्त्वमसि तस्य वै ॥४०॥
... ... ॥ ४१ ॥ ४२॥
ततश्च व्यापकान्मन्त्रानन्यांश्चाङ्गैस्समन्वितान् ।
दत्वास्मै पुनरे वैनं गृहीत्वा वृत्तिमादिशेत् ॥ ४३ ॥

अर्थात् न्यासनामक परममन्त्र (द्वयमन्त्र) पढाकर अर्थका बोध करावे, श्रीमन्नारायण स्वामी है, तुम उनके दास हो, (इत्यादि) पश्चात् व्यापकमन्त्र अष्टाक्षरादि को तथा अन्य अर्थात अव्यापक मन्त्रोंको देकर, फिर उस शिष्यको हाथसे ग्रहणकर वृत्तिका उपदेश करे ।

भगवान् भाष्यकार श्रीरामानुज स्वामीजीने वैष्णवोंके परम विद्वेषी कृमिकण्ठ चोलके उच्छेदके लिये यादवाद्रिमे श्रीनृसिंह मन्त्रका प्रयोग किया था, यह बात प्रसिद्ध है । कवितार्किकसिंह श्रीवेदान्ताचार्य स्वामीजीने श्री गरुडमन्त्रका पुरश्चरण कर गरुड भगवान्का साक्षात्कार कियाथा, और वे श्रीहयग्रीव मन्त्रोपासक थे, यह बात भी इतिहास प्रसिद्ध है । यहां पर हम यह कह देना चाहते है कि कौन आचार्य किन मन्त्रोंको जानते थे, इसके लिये कोई स्पष्ट प्रमाण नही मिल सक्ता,

क्योंकि यह विषय स्पष्ट रूपसे प्रकाशित करने लायक नहीं है, "मन्त्रं यत्नेन गोपयेत्"। अत एव केवल अनुमानसे ही काम लेना पडेगा। इस परिस्थितिमें जब तक कोई प्रबल विरुद्ध प्रमाण न मिले, श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्य भी श्रीरामकृष्णादि मन्त्रोंका उपदेश लेते और देते थे—इस विषयमें इतना कहना ही अलं है। प्रत्युत वैष्णवधर्मशास्त्रोंमें जब श्रीरामकृष्णादि मन्त्रोंके उपदेश करनेका विधान है, तब विरुद्ध पक्ष का कोईभी युक्तिवाद इस बातको सिद्ध नहीं कर सकता कि श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्य श्री राममन्त्रराज को नहीं जानते वा उपदेश करते थे।

श्रीवचनभूषणपर आक्षेप
और
उसका समाधान ।

रहस्योद्घाटन कर्ताने श्रीरामानन्दीय वैष्णवोंको श्रीरामानुज सम्प्रदायसे विरक्त करनेके लिये यह कहनेका साहस किया है कि श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्य, श्रीरामानन्दीयोंके माननीय श्रीराममन्त्रकी निन्दा करते है। इसके प्रमाण रूपमे उन्होंने श्रीलोकाचार्य स्वामीजीके श्रीवचन भूषण ग्रन्थका वाक्य कहकर कुछ वाक्य उध्दृत किये है। वे वाक्य ये है—

"सर्ववेदान्त सारार्थः संसारार्णवतारकः।
गतिरष्टाक्षरो नृणां न पुनर्भवकांक्षिणाम् ॥"
इत्युक्तरीत्या संसार निवर्तकस्य, "मन्त्राणां परमो मन्त्रो गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्। पवित्रंच पवित्राणां मूलमन्त्र स्सनातनः" इत्युक्तरीत्या सर्वमन्त्रान्तरोत्कृष्टस्याष्टाक्षरस्योपदेष्टा यः स साक्षादाचार्यः।"

हम पाठकोंको यह बता देना चाहते है कि ये वाक्य श्रीवचनभूषणके नहीं है। श्रीवचनभूषण उस ग्रन्थका नाम है, जो श्रीलोकाचार्य प्रणीत द्राविड भाषामय सूत्र रूप है, उस मे ये वाक्य नहीं है।

इस विषय मे श्रीवचन भूषण मे क्या है ? यह दिखाने के लिये हम श्रीवचन भूषण के द्राविड भाषामय सूत्रों को ही उध्दृत कर के उनका भाषामे अनुवाद कर देते है ।

(द्राविड ।)

" नेरे आचार्यनेन्बदु संसारनिवर्तकमान पेरिय तिरुमन्त्रत्तै युपदेशित्तवनै । ८ । संसार वर्धकङ्गळु माय् क्षुद्रङ्गळुमान भगवन्मन्त्रङ्गळैयुपदेशित्तवर्हळुक्कु आचार्यत्वपूर्त्तियिल्लै । ९ । भगवन्मन्त्रङ्गळै क्षुद्रङ्गळेन्गिरदु फलद्वारा । १० । संसारवर्धकङ्गळेन्गिरदुमत्ताले । ११ । इदुदानौपाधिकम् । १२ । चेतननुडैय रुचियाले वरुहैयाले । १३ ।

(संस्कृतानुवाद ।)

" संसारनिवर्तकस्य महाश्रीमन्त्रस्योपदेष्टा साक्षादार्य इत्युच्यते । ८ । संसारवर्धकानां क्षुद्राणां भगवन्मन्त्राणामुपदेष्टृषु आचार्यत्वपूर्तिर्नास्ति । ९ । भगवन्मन्त्राः फलद्वारा क्षुद्रा इत्युच्यन्ते ।१०। संसारवर्धका इत्यपि ततएव । ११ । इदमौपाधिकम् । १२ । चेतनानां रुच्या समागतत्वात् । १३ ।

(हिन्दी)

संसारनिवर्तक महाश्रीमन्त्र का उपदेष्टा साक्षादाचार्य कहा जाता है । ८ । संसारवर्धक (अतएव) क्षुद्र

भगवन्मन्त्रोंके उपदेष्टाओं मे आचार्यत्व की पूर्ति नही । ९ । भगवन्मन्त्रोंको क्षुद्र कहना फलद्वारा । । १० । संसारवर्धक कहना भी उसी से । ११ । यहं औपाधिक है । १२ । चेतनोंके रुचिसे आने के कारण । १३ ।

उपर उदाहृत श्रीवचन भूषण के सूत्रों मे ' श्रीराममन्त्रराज मोक्षप्रद नही '—अथवा ' क्षुद्र फल दायक है ' ऐसा कोई शब्द नहीं है । यह सब को मालुम हो गया होगा ।

अब हम इन सूत्रोंके अर्थका विचार करते है । यह प्रकरण आचार्यानुवर्तन प्रकरण के नाम से कहा जाता है । इस मे शिष्य और आचार्य के लक्षण, उनके परस्पर मे बर्ताव, उन के कर्तव्य, और अनुसन्धान आदिका वर्णन है । कुछ सूत्रों के पश्चात् ही शिष्यको आचार्य के विषयमे कैसा वर्ताव रखना चाहिये इसका वर्णन है ।

शास्त्रोंमे कई प्रकारके आचार्य कहे गये है । लक्षण भी कई प्रकारके कहे गये है, शिष्यके लिये गुरूच्छिष्ट भोजनादिका भी विधान है । एक मनुष्यने एक व्यक्तिके पाससे क्षुद्रफल प्राप्त करनेके कार्यमे उपयोग करनेके उद्देश्यसे एक भगवन्मन्त्रका उपदेश लिया, फिर दूसरे एक आचार्यसे स्वरूप ज्ञानाद्युपयोगी मोक्षोपायाङ्ग मूलमन्त्रादिका उपदेश भी लिया, यहा यह शङ्का उत्पन्न होती है कि इन दोनो मेंसे उस मनुष्य के लिये कौन मुख्य आचार्य है ? किसके विषयमे वह मनुष्य शिष्यवृत्तिका पूर्ण अनुष्ठान करे ?

इस शङ्का की निवृत्ति के लिये यह ८ वां सूत्र प्रवृत्त हुआ है। आचार्य वर्यका अभिप्राय यह है कि आचार्य शब्द की मुख्य शक्ति उसी व्यक्ति मे है, जो कि संसार निवृत्ति रूप फलोद्देश्य से शिष्यको महाश्रीमन्त्रका उपदेश करता है, क्षुद्रफल साधनोद्देश्य से भगवन्मन्त्रों के उपदेष्टाओं मे आचार्य शब्दकी मुख्यवृत्ति नही है। क्यों कि उच्छिष्ट भोजनादि योग्य मुख्य आचार्य का लक्षणः--

" यो वै मन्त्रवरं प्रादात्संसारोच्छेद साधनम्।
मतोच्छे द्गुरुवर्यस्य तस्योच्छिष्टं सुपावनम् ॥ "
(भरद्वाजसंहिता)

अर्थात् ससार निवृत्ति साधन मन्त्रश्रेष्ठका उपदेश जिसने दिया, उसी आचार्यवर्य का पावन उच्छिष्टका ग्रहण करे। इत्यादि शास्त्रों मे संसार विवर्तक मन्त्रोपदेष्टृत्व बताया है।

इस सूत्र मे " संसारनिवर्तक महाश्रीमन्त्रका उपदेष्टा " ऐसे शब्द रखे गये है। इन में से महाश्रीमन्त्र शब्द से श्रीमन्नारायणाष्टाक्षर मन्त्र लिया जाता है। उस का विशेषण है 'ससारनिवर्तक'। इस विशेषण के देने से यह अर्थ निकलता है कि महाश्रीमन्त्र का संसार निवर्तन के उद्देश्य से उपदेश देनेवाले ही मुख्याचार्य है। अर्थात् अन्य फलोद्देश्यमे कोई उसी महाश्रीमन्त्रका ही उपदेश करे तो भी वह मुख्याचार्य नहीं। ऐसा अर्थ करने पर ही " संसार

निवर्तक " यह विशेषण देना सार्थक होता है। श्रीमन्नारायणाष्टाक्षर को चाहे जिस उद्देश्यसे उपदेश दे; तथा शिष्य उस मन्त्र को चाहे जिस अभीष्ट फलसिद्धिके कार्य मे लगावे, उस अवस्था मे भी अष्टाक्षर मन्त्र संसार निवृत्तिरूप एक ही फलको देगा,–ऐसा कहना ठीक नही होगा। यदि ऐसा ही उस मन्त्र का स्वभाव हो तो, फिर यह विशेषण–' संसार निवर्तक ' स्वरूपकथन मात्ररूप होकर व्यर्थ होगा। श्रीमन्नारायणाष्टाक्षर सर्वफल प्रद है–यह बात श्रीमल्लोकाचार्य स्वामीजी मुमुक्षुप्पडि मे कह चुके है। वहां की श्रीसूक्ति यह है—

(द्राविड)

" इदु दान् ' कुलन्दरुम् ' एन्गिर पडिये एल्लाव पेक्षितङ्गळैयुं कोडुक्कुम्। ऐश्वर्य कैवल्य भगवल्लाभङ्गळैयाशैप्पट्टवर्ग्गळुक्कु अवत्तैक्कोडुक्कुम्। "

(हिन्दी अनुवाद।)

[यह ' कुलन्दरुम् ' इस श्रीसूक्तिके अनुसार सर्व अपेक्षितों कु देता है। ऐश्वर्य, कैवल्य, और भगवल्लाभकी आशा करनेवालोंको वह देता है]

यह बात प्रमाणसिद्ध भी है—

" ऐहलौकिक मैश्वर्यं स्वर्गाद्यं पारलौकिकम्।
कैवल्यं भगवन्तं च मन्त्रोयं साधयिष्यति ॥ "

इस वचनमे ऐहलौकिक और पारलौकिक ऐश्वर्य प्रदत्व

तथा कैवल्य प्रदत्व इस मन्त्रको बताया गया है। तब यह अवश्य ही स्वीकार करना पडेगा कि उपदेष्टावा गृहीताके इच्छाके अनुसार यह मन्त्र कार्य करेगा। एवंच श्रीमन्नारायणाष्टाक्षर का भी संसारनिवर्तनोद्देश्यसे उपदेष्टा ही मुख्याचार्य होंगे, अन्यफलो द्देश्यसे उपदेष्टा मुख्याचार्य नहीं।

यह बात श्रीवरवर मुनिस्वामीजीकी श्रीवचनभूषण टीकासे भी स्पष्ट होती है। इस सूत्रकी व्याख्यामे श्रीवरवर मुनिस्वामीजी यों लिखते हैं—

(संस्कृतानुवाद)

" ऐहलौकिकमैश्वर्यम् " इत्यादि प्रकारेण अखिलफल प्रदत्वेपि अन्यफलेषु तात्पर्या भावेन मोक्षफले तात्पर्यात् ' सर्ववेदान्तसारार्थस्संसारार्णवतारकः । गतिरष्टाक्षरो नृणामपुनर्भवकांक्षिणाम् । ' इत्युक्तरीत्या संसारनिवर्तकस्य, अत एव ' मन्त्राणांपरमो मन्त्रो गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् । पवित्रं च पवित्राणां मूल मन्त्रस्सनातनः ॥ ' इत्युक्त प्रकारेण सर्वमन्त्रान्तरोत्कृष्टत्वरूप महत्त्वविशिष्टस्य श्रीमन्त्रस्य संसारनिवर्तकत्व प्रतिपत्त्या सहोपदेष्टा—इत्यर्थः "

इस टीका से दोनों बातें सिद्ध होती है। प्रथम तो श्रीमन्नारायणाष्टाक्षरका सर्वफलप्रदत्व, अर्थात् ऐश्वर्यादि क्षुद्रफल प्रदत्व भी स्वीकार किया गया है। दूसरी संसा-

रनिवर्तकत्वोद्देश्यसे इसका उपदेष्टा ही मुख्याचार्य है । "संसारनिवर्तकत्व प्रतिपत्त्या सहोपदेष्टा" यह शब्द स्मरण रखने योग्य है ।

इन निरूपणोंका मुख्य लक्ष्य क्या है ? यह थोडा सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करने पर मालुम हो जाता है । अर्थात् कोईभी मोक्षप्रद मन्त्र हो, उसका उपदेश संसारनिवर्तनके उद्देश्यसे जो करेगा, वही मुख्याचार्य होगा, फलान्तरोद्देश्यसे करनेवाला नहीं । रहस्योद्घाटनमें श्रीवरवर मुनिस्वामीजीकी टीकाका यही वाक्य उद्धृत किया गया है, किन्तु " संसार निवर्तकत्व प्रतिपत्त्या सह " इतना भाग बीचमें छोड दिया गया है ।

श्रीवचन भूषणके—उपर उदाहृत आठवा सूत्र और उसकी टीका इन दोनोंमेंसे किसीमें भी यह नहीं आया कि नारायणमन्त्र ही मोक्ष प्रद है दूसरा नहीं, उसके उपदेष्टा ही आचार्य कहला सकते है दूसरे नहीं । इतनी बात तो टीकामें अवश्य है कि सर्वमन्त्रान्तरोत्कृष्ट संसारनिवर्तक अष्टाक्षरका संसारनिवर्तनोद्देश्यसे उपदेश देनेवाला मुख्याचार्य है । इसमें अष्टाक्षरको सर्वमन्त्रान्तरोत्कृष्ट बताना स्वाभाविक बात है, प्रत्येक भगवन्मन्त्रकी महिमा कहते वक्त उसको सर्वोत्कृष्ट बताना सर्वत्र पाया जाता है, यह कुछ अन्य मन्त्रका दूषण नहीं हो सकता ॥

अब तक आठवें सूत्रका हमने विचार किया । अब

नवम सूत्र पर विचार करते हैं। वह सूत्र यह है—" संसार वर्धक (अतएव) क्षुद्र भगवन्मन्त्रों के उपदेष्टाओं मे आ-चार्यत्वकी पूर्ति नही। " इसका अर्थ स्पष्ट है। इस मे संसारवर्धक क्षुद्र ये दो विशेषण उन भगवन्मन्त्रों को दिये गये हैं, जिनके उपदेष्टाओं मे आचार्यत्वकी पूर्ति नहीं है। यहां पर यह विचार करना चाहिये कि यदि सूत्रकर्ता का अभिप्राय यह होता कि श्रीमन्नारायणाष्टाक्षर एक ही मोक्षप्रद है, अन्यमन्त्र नही, तो इस सूत्र मे भगवन्मन्त्रोंको जो दो विशेषण ' संसारवर्धक ' ' क्षुद्र ' ऐसे दिये गये हैं, यह व्यर्थ होंगे; क्यों कि आठवें सूत्र मे तो कही चुके थे कि श्रीमदष्टाक्षर ही मोक्षप्रद है दूसरा नही, और उसका उपदेष्टाही आचार्य है—दूसरा नहीं। इस सूत्र मे तब ऐसे शब्द होना चाहिये कि " अन्य भगवन्मन्त्रोंके उपदेष्टाओं मे आचार्यत्वकी पूर्ति नही "। सूत्रोंका तो यही नियम कि जहांतक बने संक्षिप्त शब्दों मे हो। तब ऐसे निरर्थक विशेषणों को देकर व्यर्थ सूत्रों को क्यों बढाते। इस से यह सिद्ध होता है कि श्रीवचन भूषणकार का यह अभिप्राय नही है कि एक श्रीमन्नारायणाष्टक्षर ही मोक्षप्रद है अन्यभगवन्मन्त्र नहीं, उसका उपदेष्टाही आचार्य है दूसरे भगवन्मन्त्रका उपदेष्टा नहीं। उनका अभिप्राय यही है कि संसार निवर्तनोद्देश्य से उपयुक्त भगवन्मन्त्रका उपदेष्टा ही मुख्या चार्य है, क्षुद्रफलोद्देश्य से मन्त्रोपदेष्टा नहीं॥

नवम सूत्रमें ' संसारवर्धक ' और ' क्षुद्र ' ऐसे दो विशेषण भगवन्मन्त्रों को दिये गये है, इस पर साधारण तया यह शङ्का उत्पन्न होती है कि भगवानका तो मन्त्र, फिर वह संसारवर्धक कैसे ? और उसको क्षुद्र ही कैसे कहा जाय ? इस शङ्का का समाधान दसवें और ग्यारहवें सूत्रोंमे किया गया है । वे सूत्र ये है–" भगवन्मन्त्रोंको क्षुद्र कहना फलद्वारा " " संसारवर्धक कहना भी उसी से " । इन सूत्रोंका अर्थ यह है *कि–भगवन्मन्त्रोंको* हमने पूर्व सूत्र मे जो क्षुद्र कहा है वह फलद्वारा, अर्थात् क्षुद्र फलप्रद होना ही क्षुद्रत्व है, " संसारवर्धक " जो कहा है वह भी इसी से, अर्थात् क्षुद्र फल प्रदत्वके कारण से । इन दोनों सूत्रों मे भी मन्त्र विशेषका कोई व्यक्तिरूप से निर्देश नही है, केवल ' भगवन्मन्त्र ' शब्द ही आया है । जो जिस को क्षुद्र फलप्रद है वह उसके लिये क्षुद्र और संसारवर्धक है ।

इन सूत्रों की वरवर मुनि स्वामिकृत टीका मे यह अवतरणिका दी गई है–" क्षुद्र तो कहते है क्षुद्र देवता मन्त्रोंको, फिर भगवन्मन्त्रोंको ऐसा क्यों कहते हैं ? इस शङ्का पर (आचार्य) कहते है. भगवन्मन्त्रों को क्षुद्र कहना, इत्यादि " । इस अवतरणिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्षुद्र तो क्षुद्रदेवता मन्त्र ही होते हैं, भगवन्मन्त्र तो क्षुद्र नहीं ।

पूर्व सूत्र मे यह कहा गया था कि क्षुद्र फलप्रद होने के कारण भगवन्मन्त्र होने पर भी उनको क्षुद्र कहा गया है, इस पर यह शङ्का उठती है कि क्या भगवन्मन्त्रों मे कोई तो स्वभावतः ही संसारनिवर्तनपूर्वक मोक्षप्रद होनेके कारण उत्तम है और कोई स्वभावतः ही क्षुद्रफलप्रद होनेके कारण क्षुद्र है,—ऐसा विभाग है ? इस शङ्काका उत्तर बारहवें सूत्र मे दिया गया है । वह सूत्र यह है " वह औपाधिक है " यहां ' वह ' शब्दसे क्षुद्रफलप्रदत्वको लेना चाहिये, तब इस सूत्रका यह अर्थ हुआ कि भगवन्मन्त्रोंका क्षुद्रफलप्रदत्व औपाधिक है, स्वाभाविक नही । वह उपाधि क्या है ? इस जिज्ञासापर तेरहवां सूत्र प्रवृत्त हुआ है । वह सूत्र इस प्रकार है—" चेतनोंके रुचिसे आनेके कारण । " भगवन्मन्त्रोंका क्षुद्रफलप्रदत्व चेतनोंके रुचिसे आनेके कारण औपाधिक है, यह इस सूत्रका भावार्थ है । इस सूत्रकी टीका श्रीवरवरमुनिस्वामीजीने यों की है—

" भगवन्मन्त्र होनेके कारण मोक्षप्रदत्व शक्ति रहने पर भी इन मन्त्रोंका क्षुद्र फलप्रदत्व, प्रकृतिवश्य चेतनकी क्षुद्र फल रुचिसे आनेके कारण "

इस टीका मे यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि जिन मन्त्रों को क्षुद्रफलप्रद होने के कारण क्षुद्र बताया था उन मे भी मोक्षप्रदत्व शक्ति वर्तमान है । वे मन्त्र क्षुद्रफल सब को नहीं देते, किन्तु जिसने अपनी रुचिसे क्षुद्रफल

प्राप्ति के लिये मन्त्र का उपयोग किया हो उस को वह मन्त्र क्षुद्रफल देता है ।

इसी सूत्रकी टीका मे आगे यह वाक्य है—

" ऐश्वर्य कामों को गोपालमन्त्रादि, पुत्रकामों को राममन्त्रादि, विद्या कामों को हयग्रीव मन्त्रादि, विजय-कामों को सुदर्शन नारसिंह मन्त्रादि इस प्रकार नियमसे क्षुद्रफलही देते रहना, चेतनों की रुचिके अनुसार ये ये मन्त्र इन इन फलों को दें—इस प्रकार ईश्वरके नियमसे कल्पित रखने के कारण है । वह चेतनों की रुचिके अनुगुण कल्पित होने के कारण उनका वह स्वाभाविक नहीं, औपाधिक कह सकते है । "

यह टीका द्राविड भाषामें है, उसका हमने हिंदीमे अनुवाद कर दिया है । इसी का संस्कृतानुवाद रहस्योद्घाटनकार ने उद्धृत किया है । परतु वह पूरा भी नही और अनुवाद ठीक भी नहीं । उपर उद्धृत टीका को पाठक सावधान पढें । अर्थ विचार करें । टीकाकार का कहना है कि ऐश्वर्यकी चाहना करनेवालों को गोपालमन्त्रादि ऐश्वर्य ही को नियमपूर्वक देता है, सन्तानकी चाहना करनेवालों को राममन्त्रादि नियमपूर्वक सन्तान ही को देता है, विद्या की चाहना करनेवालों को हयग्रीव मन्त्रादि नियमपूर्वक विद्या ही को

देता है, विजय की चाहना करनेवालों को सुदर्शन नारसिंह मन्त्रादि नियमपूर्वक विजय ही को देता है,—इस का कारण, चेतनों की रुचिके अनुगुण, ईश्वरका सङ्कल्प है, वह संकल्प इस प्रकारका है—ऐश्वर्य कामको गोपालमन्त्र ऐश्वर्यही को अवश्य दे, सन्तान काम को राममन्त्र सन्तान ही अवश्य दे, विद्याकाम को हयग्रीव मन्त्र विद्या ही अवश्य दे, विजय काम को सुदर्शन मन्त्र विजय ही अवश्य दे—इति। भगवान का यह संकल्प और तदनुसार उन मन्त्रों का उन फलों की इच्छा करनेवालों को उन फलोंका देना कोई दूषित बात नहीं है। हम यह पूछते हैं कि एक मनुष्य सन्ततिकी इच्छासे राममन्त्र का पुरश्चरण करे तो उस मनुष्यको राममन्त्र सन्तान न दे तो क्या दे ? क्या पुरश्चरण करनेवाला तो सन्तान मांगते रहे, और राममन्त्र उस को मोक्ष दे दे! नहीं नहीं, कभी नहीं दे सकता। मन्त्र तो क्या, भगवान् खुद सामने आकरभी नहीं देते, ध्रुवचरित्र इसका उदाहरण हैं। ध्रुवने राज्यकामना से द्वादशाक्षरमन्त्रका जप किया तो भगवानका प्रत्यक्ष दर्शन मिला, परन्तु भगवानने दर्शन देकर भी अपेक्षित फल राज्य ही दिया। हां, यह सत्य है कि भगवानने अपनी तरफ से मोक्ष भी दिया, क्योंकि भगवान्के दर्शन का फल राज्यमात्र न होना चाहिये, उनका दर्शन मोक्षके विना सफल नहीं होता। पाठक

समझ गये होंगे कि न तो श्रीवचन भूषणमे और न उसकी टीकामे श्रीराममन्त्रका दूषण है, प्रत्युत प्रशंसा ही है, प्रशंसा तो इस प्रकार है कि सन्तानकी इच्छासे श्रीराम-मन्त्रका जो जप करेगा उसको अवश्य ही सन्तान मिलेगा।

रहस्योद्घाटनकार ने उक्त पुस्तकके २ रे पृष्ठमे श्रीवचन भूषणके कह कर दो वाक्य उद्धृत किया है—वे वाक्य ये हैं—

" मन्त्रान्तराणां संसारवर्धकानां अतएव क्षुद्रत्व प्रतिपत्तियोग्यानां इतर भगवन्मन्त्राणां उपदेष्टुराचार्यत्वपूर्ति नास्ति " " अपरञ्च—भगवन्मन्त्राणां क्षुद्रत्वंच अर्थ कामपुत्र विद्यादि क्षुद्रफलप्रदत्वेन बन्धक क्षुद्रफल प्रदत्वादेव संसारवर्धकत्वम् । " ये दोनों वाक्य न तो श्रीवचन भूषणमे है, और न उस की टीकामे। तब समझना चाहिये कि ये वाक्य श्रीवचनभूषणके है—कह कर धोका देनेकाही उन्होंने यत्न किया है । उस पुस्तकके उसी २ रे पृष्टमे श्रीवचन भूषणमे श्री लोकाचार्यका वाक्य कह कर नीचे लिखा वाक्य उद्धृत किया है—"ऐश्वर्य कामानां गोपाल मन्त्रादयः, पुत्रकामानां राममन्त्रादय:, विद्याकामानां हयग्रीव मन्त्रादयः, विजयकामानां सुदर्शन नारसिंहमन्त्रादयः, इतीश्वरेण नियमेनकल्पितत्वात् प्रायेण क्षुद्रफलप्रदा एवेत्यवगन्तव्यम् । " यह वाक्य श्रीवचन भूषणका नहीं है । इसकी टीकामे भी ऐसा वाक्य नही है । श्रीवचनभूषणमे जो सूत्र है, और उस की टीकामे जो वाक्य है उन को हमने पहले

ही लिख कर उन पर विचार किया है । उस से पाठकोंको सब बातें स्पष्ट प्रतीत हो जायेंगी । श्रीवचन भूषण की टीका करते हुए किसी नवीन पुरुषने कुछ लिख दिया हो तो उसका जिम्मेवार लोकाचार्य स्वामीजी नही हो सकते । अच्छा, अब आगे चलें ।

मुमुक्षुप्पडि पर आक्षेप
और
उसका समाधान।

रहस्योद्घाटनके ४ थे पृष्ट में मुमुक्षुप्पडिके कुछ वाक्य संस्कृतानुवाद रूप से उध्दृत कर के उनका अनुचित अर्थ वर्णन किया है, और उस अयोग्य स्वकल्पित अर्थ के आधार पर श्रीलोकाचार्य के उपर श्रीराममन्त्र की निन्दा करने का दोष आरोपण किया है। वे वाक्य ये है—

भगवन्मन्त्राश्चानेके । ते तु व्यापका अव्यापकाश्चेति द्विविधाः । अव्यापकापेक्षया व्यापकास्त्रयःश्रेष्ठाः । एतेषां मन्त्राणां मध्ये-बृहच्छ्रीमन्त्रः प्रधान भूतः । अन्ययोरशिष्टपरिग्रहोपूर्तिश्चास्ति । इमं वेदा ऋषयस्सूरय आचार्याश्च प्रत्यपादयन् ”

येही रहस्योद्घाटन मे उध्दृत मुमुक्षुप्पडिके वाक्य है। मुमुक्षुप्पडि द्राविड भाषामय ग्रन्थ है। जिस भाग का अनुवाद उध्दृत किया गया है, उस भाग का मूल ही को हम यहा नीचे लिखते है, पीछे उसका अनुवाद हम स्वयं लिख देते है।—

“ भगवन्मन्त्रङ्गळ् दाननेकङ्गळ् । १ ।

अवैदान् व्यापकङ्गळेन्रुम् अव्यापकङ्गळेन्रुम् इरण्डु वर्गम् । १० । अव्यापकङ्गळिल् व्यापकङ्गळ् मून्रुम् श्रेष्ठङ्गळ् । ११ । इवैमूत्रिलुम् वेत्तुक्कोण्डु पेरिय तिरुमन्त्रम् प्रधानम् । १२ । मत्तयवैयिरण्डुक्कुम् अशिष्टपरिग्रहमुम् अपूर्तियुम् उण्डु । १३ । इत्तै वेदङ्गळुम् ऋषिहळुम् आळ्वार्हळुम् आचार्यहळुम् विरुम्बिना हैळ् । १४ ।

इन सूत्रोंका भाषानुवाद इस प्रकार होता है–

भगवन्मन्त्र अनेक है । ९ । वे व्यापक और अव्यापक ऐसे दो वर्ग है । १० । अव्यापकापेक्षया व्यापक तीनों श्रेष्ठ है । ११ । इन तीनों मे से बृहच्छीमन्त्र प्रधान है । १२ । बाकी दोनों को अशिष्ट परिग्रह भी और अपूर्ति भी है । १३ । इस का वेद ऋषि आल्वार और आचार्यों ने आदर किया है ।१४।

सूत्रोंका अर्थ स्पष्ट है । केवल तेरहवें–और चौदहवें सूत्रोंका अर्थ विचारणीय है । तेरहवें सूत्र का अर्थ रहस्योद्घाटन मे यों किया गया है—

" अन्य दो मन्त्र (विष्णु और वासुदेव मन्त्र) अशिष्ट पुरुष ग्रहण करते हैं और मोक्ष रूप सिद्धि की पूर्णता उनमें नहीं है " । उपर हमने इन सूत्रोंका जो अनुवाद रखा है उसका और इसका मिलान करनेसे

मालुम होगा कि कितना फरक है। वहां तो 'अशिष्ट परिग्रह भी है' ऐसा शब्द आया है, इससे यह अर्थ निकलता है कि शिष्ट परिग्रह तो है ही, किन्तु अशिष्ट परिग्रह भी है। रहस्योद्घाटनकार अर्थ करते है— "अशिष्ट पुरुष ग्रहण करते है।" इस अर्थसे यह ध्वनित होता है कि—"शिष्ट पुरुष ग्रहण नही करते"। सूत्र मे जो "अपूर्ति" शब्द है, उसका अर्थ शब्दोंकी अपूर्ति है, अर्थात् वासुदेव और विष्णु मन्त्रोंमे शब्दोंकी पूर्ति नहीं है, शब्दोंका अध्याहार किये विना उन मन्त्रोंसे कोई अर्थ पूरा नही निकल सकता, अतएव उपयुक्त शब्दोंको जोड-कर मन्त्रोंका अर्थ करना पडता है, इसलिये उन मन्त्रोंमे शब्दपूर्ति नहीं है। इसीको सूत्रकारनें कहा है। किन्तु रहस्योद्घाटनकार इसका अर्थ करते हैं-"**मोक्षरूप सिद्धिकी पूर्णता उनमे नही है**" इति। ऐसा अर्थ करना अनर्थ करना है। अव चौदहवें सूत्रको लेते हैं। उसका अर्थ *रहस्योद्घाटनकार का किया हुआ यह है*-"**ऐसाही वेद, ऋषि, आचार्य और विद्वज्जन प्रतिपादन करते है।**" मूल सूत्रके "इत्ते" पदका अर्थ है-इस मन्त्रका, परंतु उद्घाटनकर अर्थ करते है "एसाही"। "इत्ते" का हिन्दीमे अर्थ करो तो "इसको" या "इसका" हो पवता है, "एसाही" यह अर्थ कैसे हुआ? मालुम ... अन्तिमपद "विरुम्बिनाहिळू" का अर्थ होता है—

" आदर किया है ", परंतु उद्घाटनकार अर्थ करते है–" प्रतिपादन करते है। " क्या का क्या अर्थ हो गया! हां, ऐसा अर्थ न करते तो उन्होंने आगे जो आचार्य की हॅसी की है, वह कैसे हो सकता था, इसी लिये ऐसा किया होगा ! " विद्वज्जन " यह शब्द उद्घाटनकारके अर्थके बीचमें पडा है, वह किस पदका अर्थ है, मालुम नहीं होता, स्यात् " आळ्वार " पदका अर्थ होगा। उस पदका यह अर्थ कैसे ? यह कौन पूछे !

अस्तु, अब तक तो हम ने दो सूत्रों (१४, १४) पर रहस्योद्घाटन कारने जो अर्थ किया है, उसीका विचार किया है, अब हम इन सब सूत्रों पर सामान्य विचार करेंगे। सूत्रकारने प्रथम भगवन्मन्त्रों को अनेक बताकर उन को व्यापक और अव्यापक इन नामों से दो भागों मे विभक्त किया है, फिर अव्यापक मन्त्रों की अपेक्षा व्यापक तीनों मन्त्रों को श्रेष्ठ बताकर उन मे भी बृहच्छ्री मन्त्र को प्रधान कहा है, अनन्तर बाकीके दो व्यापकमन्त्रों मे अशिष्ट परिग्रह का भी होना और शब्द पूर्तिका अभाव बताया है, परचात् बृहच्छीमन्त्र में वेद ऋषि आळ्वार और आचार्यों का आदर बताया है।

यहां पर कुछ वक्तव्य कह कर पीछे सूत्रार्थ पर विचार करेंगे। मन्त्रो की शब्दशक्ति और अर्थ शक्ति ऐ-

शक्तियां है । मन्त्र किसी को शब्दशक्तिसे कार्य करते है, और किसी को केवल अर्थ शक्तिसे कार्य करते हैं । अर्थ शक्ति का तात्पर्य अर्थ ज्ञानसे है ! जप होम तर्पण अर्चन इत्यादि कार्यों मे मन्त्रों का उपयोग करने वाले शब्दशक्तिसे काम लेते है, उनको अर्थ ज्ञानसे विशेष प्रयोजन नहीं । न हो तौ भी कार्यमे हानि नहीं ।ज्ञानसे प्रयोजन रखनेवालों को शब्दशक्तिसे प्रयोजन नही। श्रीवैष्णव प्रपन्नजन द्वितीय कोटिके है । अर्थात वे जो पञ्च संस्काराङ्गतया मन्त्र लेते है, वह इस लिये कि ज्ञातव्यार्थों का उससे बोध हो, इस लिये नही कि-उस से जप होम आदि करें । पाठक समझ गये होंगे कि श्रीवैष्णव सम्प्रदाय मे प्रधान मन्त्रोंका उपयोग किस प्रकार. होता है । मुमुक्षुप्पडिमे यह विषय स्पष्ट कहा गया है—" अयंतु 'कुलं ददाति' इत्युक्त प्रकारेण सर्वापेक्षिनानि ददाति । १९ । ऐश्वर्य कैवल्य भगवल्लाभा पेक्षिणां तान्ददाति । २० । कर्म ज्ञान भक्तिषु प्रवृत्तानां विराधिनो दूरीकृत्य तान् फलपर्यन्तान्करोति । २१ । प्रपत्तौ प्रवृत्तानां स्वरूपज्ञानमुत्पाद्य कालक्षेपस्य भोगस्यच हेतुर्भवति । २२ । इन मेंसे २० वें सूत्रकी व्याख्या करते हुए श्रीवरवर मुनिस्वामीजीने यों लिखा है—" ऐहलौकिक और पारलौकिक ऐश्वर्य, आत्म प्राप्तिरूप कैवल्य, और परमपुरुषार्थ भगवल्लाभकी आशा [illegible]वालोंको जप होमादिमुखसे स्वय साधन होकर उन

पुरुषार्थोंको देता है।" २१ वीं सूत्रकी व्याख्या यों की है-" कर्मयोगमे प्रवृत्त पुरुषोंको, जप होमादिसे वे यदि अपने को सहायक बनावें तो, कर्मयोगारम्भविरोधि पापोंको दूर कर, उस कर्मका अविच्छेदापादक हो उसको पूर्ण कराता है।" "प्रथमसेही ज्ञान योगमे प्रवृत्त पुरुषोंको, यदि वे अपनेको सहायक बनावें तो, कर्मसाध्य ज्ञानारम्भ विरोधिपाप निवृत्ति करके उस ज्ञानको प्रतिदिन अतिशय पहुंचाता हुआ उसको पूर्ण कराता है।" "भक्तियोगमे प्रवृत्त पुरुषोंको, वे यदि आपनेको सहायक बनावें तो, भक्तियोगारम्भविरोधि पापको नष्ट कर भक्तिविवृद्धिका हेतु बनता हुआ उसको पूर्ण कराता है"। २२. वें सूत्रकी व्याख्या यों है-" स्वरूपानुरूप प्रपत्त्युपायमे प्रवृत्त पुरुषोंको तदनुरूप-भगवत्पारतन्त्र्य रूप स्वरूप ज्ञानको सुस्पष्ट रूपसे उत्पन्न करा कर अर्थानुसन्धानादिसे कालयापनाके उपयोगी बनता हुआ, ' मम सदा मधु दुग्धं अमृतंच भवतु भगवतः श्रीनाम ' इत्युक्त प्रकारसे, प्रतिपाद्यवस्तुके समान स्वयं भोग्य होनेके कारण भोगका हेतु बनता है।"

उपर उदाहृत सूत्र और व्याख्यासे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्तियोग करनेवालों को मूलमन्त्र शब्दशक्तिसे सहायता पहुंचाता है, केवल प्रपत्तिनिष्ठोंको भगवत्पारतन्त्र्यादि रूप स्वरूप ज्ञानोत्पादन द्वारा सहायक होता है। हां, यह बात अवश्य है कि,

जन मूल मन्त्रको भगवदर्चनादि कार्योंमे भी लाते है, परंतु प्रधान उद्देश वह नही है, अर्थज्ञानही प्रधान है। मुमुक्षुओंको ज्ञातव्यार्थ मुख्यतया पाच है। उस अर्थ पञ्चकके ज्ञानके लिये ही मूल मन्त्र आदिका उपदेश श्रीवैष्णव सम्प्रदायमे दिया और लिया जाता है।

अब हम मुमुक्षुप्पडिके ९ से १४ तकके सूत्रोंपर विचार करते है। भगवन्मन्त्रोंका व्यापक और अव्यापक इस प्रकार दो वर्गोंमें विभाग किया गया है। व्यापक शब्द कई अर्थोंमे प्रयुक्त होता है। जैसा धूमव्यापक है वह्नि, यहांपर व्यापक शब्द आया है, इससे यहां यह अर्थ लेते है कि जहां धूम हो वहा वह्निका अवश्य होना। भगवान् सर्व व्यापक है, यहांपर व्यापक शब्द व्याप्ति अर्थात् सब वस्तुओंमे सार्वदैशिकसम्बन्धयुक्त रहना। एक व्यापक शब्द एसा भी है, हम लोग कहां करते है कि उससे यह व्यापक है, अर्थात् अधिक देश कालवृत्ति है। व्यापक शब्द का एक अर्थ यह भी होता है—व्यापक स्वरूप प्रतिपादकत्व। भगवान का जगद्व्यापकत्व अर्थात् जगदन्तर्यामित्वका प्रतिपादन करना ही मन्त्रका व्यापकत्व है। इन सब व्यापक शब्दों से विलक्षण एक व्यापक शब्द और है, उस का भी अर्थ व्यापक स्वरूप का प्रतिपादन करना ही है, परतु यह व्यापकत्व कुछ विलक्षण है, अर्थात साधारणत्व पर्याय है। तब

व्यापक का अर्थ साधारण और अव्यापक का अर्थ असाधारण । व्यापकमन्त्र उस को कहेंगे जो साधारण स्वरूप का प्रतिपादन करता हो, और अव्यापकमन्त्र उसको कहेंगे जो असाधारण स्वरूप का प्रतिपादन करता हो। यहां पर ऐसेही व्यापक अव्यापक शब्दों का प्रयोग किया है। नारायण विष्णु वासुदेव शब्द साधारण हैं, अर्थात् सर्वावतार सर्व मूर्ति साधारण स्वरूप को कहते हैं, कृष्णादि शब्द असाधारण स्वरूप को कहते है ।

अष्टाक्षर मन्त्रका वर्णन करते हुए उस के व्यापकत्व के विषय मे यों कहा गया है—

" ब्रह्मन्नष्टाक्षरो मन्त्रः श्रुतीनां दृष्टिरिष्यते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामपि साधनम् ।
कृतं बहुविधैर्मन्त्रैः कृतं यज्ञे नियन्त्रितैः ॥
कृतंच कर्मणा तत्र यत्राष्टाक्षरसान्निधिः ।
साधारणोप्ययं मन्त्रस्सर्वास्वपिच मूर्तिषु ॥

अर्थात् अष्टाक्षर वेदोंका दृष्टिरूप है, धर्मार्थ काम मोक्ष देनेवाला है, एक अष्टाक्षर के होने पर अन्य यज्ञादिकी आवश्यकता नहीं है, सर्वमूर्ति साधारणमन्त्र है ।

यहां पर जो सर्वमूर्ति साधारणत्व बताया गया है यही व्यापकत्व है । तब अव्यापकत्व का अर्थ असाधारणत्व हुआ । इस प्रकार के विभागमे कृष्णादि

मन्त्रों को असाधारण मन्त्रत्वही सिद्ध होता है। इस प्रकारके तीन व्यापक (साधारण) मन्त्रोंमे नारायण मन्त्रकी प्रधानता बताई गई है। तेरहवें सूत्रमें नारायण मन्त्रको छोडकर बाकीके दो मन्त्र अर्थात् वासुदेव मन्त्र और विष्णुमन्त्रमें अशिष्टोंके परिग्रह काभी होना और शब्दकी अपूर्ति बताई गई है। यहां रामकृष्णादि मन्त्रोंका प्रसङ्गही नहीं है। क्योंकि तेरहवें सूत्रमे " शेष दोनोंको " शब्द है, व्यापक मन्त्र तीन जो बताये गये है. उनमेंसे बृहच्छ्रीमन्त्र अर्थात् श्रीमन्नारायणाष्टाक्षर प्रधान कहा गया है, अब शेष रहे दो व्यापक मन्त्र अर्थात् वासुदेव मन्त्र और विष्णु मन्त्र, इन्हीं दोनोंको यहां " शेष दोनों " को कहते है। इन दोनों मन्त्रोंको अशिष्ट परिग्रह और अपूर्ति है। यहां अशिष्ट शब्दसे निर्गुण ब्रह्मवादी और वीरशैव लिये जाते ह। निर्गुण ब्रह्मवादी ब्रह्मस्वरूप मात्रको मानने परभी उस को निर्गुण मानते है, अतएव सगुण ईश्वर प्रतिपादन करनेवाला नारायण मन्त्र छोडकर वे वासुदेव और विष्णु मन्त्रको पसंद करते है, और सदाशिव व तुरीय शिवको परब्रह्म जगत्कारण माननेवाले वीर शैवोंको नारायण शब्द विरुद्ध है, क्यों कि " एको हवै नारायण आसीत् " श्रुति मे जगत्कारण को नारायण शब्द से निर्देश किया है, नारायण शब्द सदाशिव मे किसी प्रकार भी

घटाया नहीं जासकता है, वासुदेव विष्णु आदि शब्द योगव्यु-त्पत्ति से किसी तरह शिवमे भी घटाये जा सकते है, अतएव वे लोग उन मन्त्रों को पसंद करते है, नारायणमन्त्र को नहीं । यही इस सूत्रमे अशिष्ट परिग्रह शब्दसे कहा गया है । शिष्ट और अशिष्ट शब्द का व्यवहार मनुष्य मात्रमे एकरूपसे नहीं होता, समुदाय समुदायमे शिष्ट वा अशिष्ट बदल जाते है । सनातन धर्मा वलम्बी जिसको शिष्टाचार कहेंगे, जैन बौद्ध आदि उस को अशिष्टाचार कहेंगे, वैसे ही जैन बौद्ध आदिके लिये जो शिष्टाचार है, वही सनातन धर्मियों के लिये अशिष्टाचार है, इस लिये शिष्ट शब्द एकरूप से सर्वत्र व्यवहृत नहीं होता । अतएव श्रीवैष्णव जिनको शिष्ट कहेंगे वेही अन्यमतावलम्बियों के लिये अशिष्ट है, और अन्य मतावलम्बियों के लिये जो शिष्ट है वेही वैष्णवोंके लिये अशिष्ट है । इस मे किसीको बुरा माननेकी आवश्यकता नहीं है। तब एक श्रीवैष्णवाचार्य विरुद्ध मतावलम्बियों को अशिष्ट कहें तो इसमे कोई अन्याय नहीं है। वासुदेव मन्त्र और विष्णु मन्त्रों मे अपूर्ति भी है । वसतीति वासुः, वासुश्चासौ देवश्च वासुदेवः,—यह वासुदेव शब्द की व्युत्पत्ति है, "वस निवासे" इस धातु से वासु शब्द बनता है, विशतीति विष्णुः, विष्ऌ, व्याप्तौ " इस धातु से विष्णु शब्द बनता है । ये दोनो शब्द व्यापक वस्तु के वाचक हैं, परंतु इन शब्दोंमे यह नहीं है कि यहां वास करते

है वा कहां व्यापक हैं ! इस लिये सर्वग—वसतीति वासुः इस व्युत्पत्तिमें " सर्वत्र शब्दका अध्याहार करना पडताहै, ऐसा ही सर्वं विशतीति विष्णुः— इस व्युत्पत्ति मे सर्व शब्द-का अध्याहार करना पडता है। यही शब्द की अपूर्ति है। नारायण शब्दमे नाराः। अयनं यस्य सः इस व्युत्पत्तिसे सर्वव्यापकत्व प्राप्त होता है, किसी शब्दका अध्याहार कर-नेकी आवश्यकता नही। यह इसमे पूर्ति है। और नाराणां अयनम्—इस व्युत्पत्तिसे समस्तकल्याण गुणाकरत्व लब्ध हो जाता है। वासुदेव और विष्णु मन्त्रमे यह बात नही, इस लिये अर्थ की अपूर्ति भी है। नारायण शब्दसे ज्ञातव्य समस्त अर्थोंका लाभ जैसा होता है, वैसा वासुदेव विष्णुमन्त्रोंसे नही हो सकता, यह सब अपूर्ति शब्दसे संगृहीत है।

यहां पर यह स्पष्ट कह देना उचित समझते है कि उपर उदाहृत तेरहवें सूत्रमे " शेष दो " शब्द पडे हुए है, शेष दो मन्त्र वासुदेवमन्त्र और विष्णुमन्त्र ही है, अन्य रामकृष्णादि मन्त्रोंका वहां कोई प्रसङ्ग ही नहीं है। अत-एव रहस्योद्घाटनकार जो व्यर्थ ही प्रसग कर रहे हैं, वह सब निर्मूल है।

चौदहवें सूत्रमे सूत्रकार कहते है कि इस अष्टाक्षरमन्त्रका वेद ऋषि आल्वार और आचार्योंने आदर किया है। वेद मे नारायण शब्दका विशेषादर कैसा है ? ऋषियोंने क्या

अर्थात् भगवान के जो अनन्त कल्याण गुण है, कृष्णमन्त्र आदिके अक्षरोंसे उन सब कल्याण गुणों का वर्णन नहीं होता। यही उक्त वाक्यों का साधारणतया अर्थ होता है। परतु उद्घाटनकार अर्थ करते है—" रामकृष्णादि अव्यापक मन्त्र समस्त कल्याण गुणों से रहित है। " " अप्रतिपादनात् " इस शब्द का अर्थ " रहित है " कैसे किया गया ! कौन इसको पूछनेवाला ? फिर कल्याण गुण तो भगवत्स्वरूप मे होते है, मन्त्रमे कल्याण गुण व सभ्य सौशील्य इत्यादि रहेंगे ही कैसे ? इसका भी विचार किया होता !

दुर्जनकरि पञ्चानन पर आक्षेप और उसका समाधान ।

रहस्योद्‌घाटनके पृष्ठ ६ मे वृन्दावनवासी श्रीरंगाचार्य स्वामीजीके दुर्जन करि पञ्चानन नामक ग्रन्थसे कुछ वाक्य उध्दृतकर और उनका मनमानी अर्थ कर, उस आचार्यके ऊपर श्रीराममन्त्र दूषणका दोष आरोपित किया है। यद्यपि अर्वाचीन ग्रन्थोंमे व्यक्तिविशेषने चाहे जो कुछ लिखा हो उसका जिम्मेवार पूर्वाचार्य नही हो सकते, और अर्वाचीन व्यक्ति विशेषके लेखके कारण परम्परा प्राप्त गुरु परम्पराको एक जनसमुदाय परित्याग करे यह भी युक्ति संगत नही हो सकता, फिर भी हम इस लिये यह लिखना चाहते है, कि वास्तवमे वह लेख भी निर्दोष है।

जिस प्रश्नके उत्तरमे श्रीरंगाचार्य स्वामीजीने "देव-त्वादिना" इत्यादि उत्तर दिया है, वह प्रश्न यह है— "उपदेशे राम कृष्णादिमन्त्रास्समाना उत तेषु न्यूना धिकेति"। इस प्रश्नका अर्थ होता है—"उपदेशके विषयमे रामकृष्णादि मन्त्र समान है, वा उनमे न्यूनाधिक भाव है ?"। इस प्रश्नका उत्तर दुर्जनकरिपञ्चानन में यों दिया गया है—

"नह्ययं विकल्पस्सम्भवति, परस्परं विरुद्ध कोटीनामेव विकल्पसम्भवात्। नहि कश्चिद्दृष्टो

द्रव्यं पृथिवी वेति विकल्पयति, किन्तु रक्तः कृष्णो वेति । साम्यं च केनचिदाकारेणाऽसमयोरपि सम्भवति–कम्बुग्रीवाद्याकारेण पट विसदृशस्यापि घटस्य पृथिवीत्वेन तत्साम्यम्। देवत्वादिना मनुष्यादधिकस्य पशुत्वादिना न्यूनस्यच देवपश्वोः प्राणित्वेन मनुष्यसाम्यम् । एवं विशेष्य भगवत्स्वरूप प्रतिपादकत्वेन रामकृष्ण मन्त्राणां साम्यं तत्तन्नामघटित मन्त्रात्मक वाक्यजन्य शाब्दबोधेभ्यो विषयितया व्यावृत्तानां व्यापकता–गुणविशेषादीनां प्रतिपादनेन न्यूनाधिकभावश्चेति।"

इसका हिन्दी में अनुवाद इस प्रकार होता है–यह विकल्प ही नहीं बनता, क्यों कि परस्पर विरुद्ध कोटियों का ही विकल्प होता है। ऐसा विकल्प कोई नहीं करता कि घडा द्रव्य है कि पृथिवी; किन्तु ऐसा विकल्प करता है कि घडा लाल है कि काला? एक आकारसे असमान वस्तुओंको भी समानता हो सकती है। कम्बुग्रीवादि आकारसे पटसे विलक्षण (असमान) घडे मे भी पृथिवीत्व धर्मसे पटसमानता है, (अर्थात् घडा और पट दोनो पार्थिव पदार्थ है–इस लिये दोनों पार्थिवत्वेन समान है,) मनुष्य की अपेक्षा देवता होनेके कारण श्रेष्ठ देवता, और मनुष्य की अपेक्षा पशु

होने के कारण निकृष्ट पशु, ये दोनों प्राणित्वेन मनुष्य समान हैं। [अर्थात् मनुष्य की अपेक्षा देवत्वाकारसे श्रेष्ठ होने पर भी देवता और मनुष्य प्राणित्वेन तुल्य हैं। और मनुकी अपेक्षा पशुत्वाकारसे नीच होने पर भी पशु प्राणित्वेन मनुष्यतुल्य है।] इसी प्रकार रामकृष्णमन्त्रों में विशेष्य भगवत्स्वरूप प्रतिपादकत्वाकार से समानता है, और वे मन्त्र राम कृष्ण आदि नामोंसे युक्त मन्त्र होने के कारण उन मन्त्ररूपी वाक्यों से जो बोध होते हैं वे परस्पर विलक्षण होते हैं, अत एव व्यापकत्व तथा इतर गुणविशेषों के प्रतिपादन करने के कारण अधिकता और न्यूनता भी होती है। अर्थात् राममन्त्र कुछ गुण प्रतिपादन करता है और कृष्ण मन्त्र कुछ गुण, न्यूनता और अधिकता दोनों में भिन्न भिन्न आकारसे हो सकती है।

भावार्थ यह है कि रामकृष्ण मन्त्र समान है कि न्यूनाधिकभाव है—यह प्रश्न ही ठीक नहीं, क्यों कि समानता न्यूनता और अधिकता सबमें है। जैसे कि देवता मनुष्य से श्रेष्ठ है तो समान भी है, पशु मनुष्य से निकृष्ट है तो समान भी है। जैसे कि राजा प्रजा से बड़ा है, क्यों कि वह राजा है, परंतु साथ ही राजा और प्रजा समान भी है। क्यों कि दोनों मनुष्य हैं। इसी प्रकार मन्त्रों में भी न्यूनाधिक भाव आकार भेदसे हो सकता है। इस प्रकार के न्यूनाधिकभावोंसे हानिलाभ कुछ नहीं है।

अब पाठक देखें कि रहस्योद्घाटनकार क्या कहते हैं ! दृष्टान्त मे देव मनुष्य पशुओं के नाम लिये गये हैं, रहस्योद्घाटनकार का कहना है कि 'नारायण मन्त्र देवता के समान है, वासुदेवादिमन्त्र मनुष्यके समान है, राम कृष्णादि मन्त्र पशु समान है,' यह बताने के लिये ही यह दृष्टान्त दिये गये है ।

हम नही समझते कि इस प्रकार अनर्थ क्यों किया जाता है ! दुर्जन करिपञ्चाननकार का क्या अभिप्राय है, और रहस्योद्घाटनकार क्या अर्थ करते है, यह पाठक स्वयं ही समझ लेंगे । इस मे किस मन्त्रकी क्या निन्दा है ।

इसके आगे दुर्जनकरिपञ्चानन के—

"नह्येते मन्त्रा अस्मत्कुलपरम्पराप्राप्त मन्त्रत्रय व्यतिरिक्ता लक्ष्मीनाथमारभ्यास्मदाचार्य पर्यन्तं के नचिदाचार्येण कस्यचिच्छिष्यस्योपदिष्टाः"

इस वाक्य को उद्धृत कर रहस्योद्घाटनकार कहते है कि—

"अब ये श्रीमुख से स्वयं पुकार पुकार कर कह रहे है कि हमारे यहां रामादिमन्त्र नही है—इत्यादि, तब हम हठात् क्यों उनमे घुसते फिरें"

इस पर हमारा वक्तव्य कुछ तो पहले भी लिख चुके है, अब फिर भी लिखते है । यह तो हम बता ही चुके कि सभी मन्त्र नियमपूर्वक दिये नही जाते, शिष्य को

जिज्ञासा और आचार्य की इच्छा से कोई कोई मन्त्र दिये लिये जाते है, अतएव सभी आचार्य सब मन्त्रोंको जानते हों यह सम्भव नही। यह भी हम बता चुके कि श्रीरामानुज सम्प्रदाय मे श्रीमन्नारायणाष्टाक्षर द्वयमन्त्र और चरम श्लोक नियमपूर्वक पञ्चसंस्कार समय मे आजकल दिये जाते है, अन्यमन्त्रों का देना लेना ऐच्छिक है।

श्रीवरवरमुनि स्वामीजी के शिष्य थे श्रीदेवाचार्य, यह प्रमाणित हो चुका है। तव हम लोगों को किसी प्रकार समन्वय करना चाहिये। हमारा अनुमान यह है— श्रीदेवाचार्यजीने श्रीवरवरमुनि स्वामीजी से श्रीमन्नारायणाष्टाक्षर द्वय और चरमश्लोक लेने के साथ श्रीराममन्त्र भी प्रार्थना पूर्वक लिया हो, फिर उत्तर भारत मे तात्कालिक परिस्थिति देख कर श्रीराममन्त्र मात्र का उपदेश व प्रचार किया हो, और आगे उसीका उपदेश करनेका नियम बन गया हो, तो इसमे असम्भव कुछ नहीं। ऊर्ध्वपुण्ड्रमे जो नाना भेद इस समय पाये जाते है, वह भी तो क्रमक्रमसे हुए है। ऐसाही यह इतना भेद बन गया हो तो क्या आश्चर्य! आज दक्षिणमे जो तें गलै वडहलै भेद है, यह श्रीरामानुज स्वामीजीके समयमे नही था, यह सब मानते है। पीछेसे यह भेद हो गया, सिद्धान्तों तकमें भेद आज मानने लगे हैं, परन्तु मूल श्रीरामानुज स्वामीजीको कोई नही छोडता, और न मूल

सिद्धान्त को ही कोई छोडता, ऐसाही श्रीरामानन्दियोंमे भी पुण्ड्रभेद मन्त्रभेद आदि हो जाना आश्चर्यकी बात नही। इससे यह नही कहा जा सक्ता कि हमारा श्रीरामानुज सम्प्रदाय नही, वा हम श्रीरामानुजस्वामीजीके शिष्य परम्परामे नहीं। जैसे आज वडहले और तेंगले शाखावाले अपने अपने सिद्धान्तादिमे श्रीरामानुज स्वामीजी आदि पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंसे आधार दिखानेका यत्न करते है, वैसे ही श्रीरामानन्दीयोंको भी चाहिये कि वे भी पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंमेसे आधार अन्वेषण करें, यही उनका कर्तव्य और उचित है। यह नहीं कि पूर्वाचार्योंके सम्बन्धही छोडनेका यत्न करें। अस्तु, उपर जो दुर्जन करि पञ्चानन का वाक्य उध्दृत है, उसका अभिप्राय इतनाही होना चाहिये कि श्रीरामकृष्ण दि मन्त्र श्रीरामानुज सम्प्रदायमे शिष्य प्रशिष्य परम्परया नियम पूर्वक दिये लिये नही जाते; इससे अधिक और कुछ नही। दुर्जन करि पञ्चाननकारने ही श्रीवृन्दावनके श्रीरंगमन्दिरमे श्रीरामचन्द्र भगवान्‌की प्रतिष्ठा कर रखी है, तो क्या वहां उनकी पूजा श्रीरामाय नमः कहकर नही की जाती होगी? तब वह कैसे लिख सकेंगे कि श्रीराममन्त्र हम लोग नही जानते। अतएव उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसका अभिप्राय यही होना चाहिये, जो कुछ उपर लिखा गया है।

श्रीतोताद्रिमठाधीशकी उक्तियां।
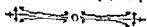
रहस्योद्घाटन के पृष्ठ १० मे पुस्तकके कर्ता लिखते है—

" जिस समय तोताद्रिमठ के स्वामीजी श्रीअवध मे पधारे थे उस समय कुछ सज्जनों के प्रश्न करने पर उन्हों ने स्पष्ट कह दिया था कि हमारे सम्प्रदाय मे श्रीराममन्त्र की परम्परा नही है। और कितनों ही को वे श्रीराममन्त्र छुडा कर और कण्ठी तुडा कर नारायणमन्त्र दे भी गये है। "

श्रीतोताद्रि स्वामीजी से क्या प्रश्न किया गया था और उस का उत्तर उन्हों ने क्या दिया, इस का कोई स्पष्ट प्रमाण किसी के पास नही। अस्तु, थोडी देर के लिये हम रहस्यो द्घाटनकार ने श्रीस्वामीजीके जो उत्तर लिखा है, उसी को मान लेते है, परंतु इस से क्या होगा। हम तो पहले ही लिख चुके है कि शिष्य प्रशिष्य परम्परया आजकल नियमपूर्वक श्रीराममन्त्र आदिका उपदेश किया नही जाता, अतएव आज कल के सभी आचार्य श्रीराम मन्त्र उपदेश नही कर सकते। यह तो श्रीतोताद्रि स्वामीजी ने कहा ही नही है कि आचार्यमात्र श्रीराममन्त्र नही जानते। आज भी श्रीराममन्त्र जाननेवाले और उपदेश करने योग्य आचार्य कई मौजूद है। फिर

आज कोई श्रीराममन्त्र जाने वा न जाने, इस से क्या ? यदि श्रीवरवरमुनि स्वामीजी श्रीराममन्त्र जानते थे, और उन्हों ने श्रीदेवाचार्यजी को श्रीराममन्त्र का उपदेश दिया था, तो श्रीरामानन्दीय श्रीरामानुज सम्प्रदाय के हो चुके, यह सम्बन्ध अब किसीके मिटाये नहीं मिट सकता।

अब रहा श्रीराममन्त्र छुडा कर नारायणमन्त्र देना। यह बात सत्य हो सकती है कि किसी रामानन्दीय के प्रार्थना करने पर उनको स्वामीजीने नारायणमन्त्र दिया हो, इस मे कोई आपत्ति की बात भी नही है, क्यों कि एक ही वैष्णव, अनेक भगवन्मन्त्र ले सकता है। राममन्त्र का छुडाना कोई चीज नही है, क्यों कि जब एक वार ले चुका तो अब उस का छुडाना क्या होता है। छुडाने का अर्थ भुला देना हो तो यह कैसे सम्भव है, क्यों कि किसी को भूल जाना मनुष्य की इच्छा के अधीन नही है।

रहस्योद्घाटन के पृष्ट १७ मे यों लिखा है—

"उनकी दो मार्मिक बातें.

"श्री तोताद्रि स्वामी जब भ्रमण करते हुए मिथिला मे गये तब नरवाहीके परहंसजी से उन्हों ने तप्त मुद्रा लेनेके लिये कहा। बोले 'और सब तो ठीक ही है केवल तप्त मुद्राकी कसर है, अतः इस का भी ग्रहण कर लेना उचित है।' परमहंसजीने कहा—'उस पर

पीछे विचार करेंगे। पहले मेरे प्रश्न का आपकृपया उत्तर दें-आपका ध्येय और ज्ञेय क्या है? ' तोताद्रिस्वामी बोले-'ध्येय श्रीमन्नारायण है और ज्ञेय श्रीमद्रामायण (वाल्मीकीय) ' परमहंसजीने कहा तो ' आपके ध्येय चतुर्भुज और ज्ञेय विग्रह द्विभुज है। आपके ध्येय और ज्ञेय में वैषम्य है। पर हमारे ज्ञेय और ध्येय एक ही (द्विभुज श्रीरामचंद्र भगवान्) है। ' स्वामी जी महाराज चुपरह गये। फिर बोले ' ऐसा प्रश्न तो आज तक हमसे किसीने नहीं किया था।"

इस घटना का सत्यासत्यनिर्णय होना कठिन है। हम तो केवल प्रश्न और उत्तर पर विचार करेंगे। प्रश्न था " ध्येय क्या " । उस का उत्तर " श्रीमन्नारायण है " यह ठीक हुआ। दूसरा प्रश्न था-ज्ञेय का, उस का उत्तर मिला " श्रीमद्रामायण " यही समझ मे नहीं आता। ज्ञातुं योग्यं-ज्ञेयम्, जानने योग्य वस्तु ज्ञेय कहलाता है। श्रीमद्रामायण तो प्रमाणग्रन्थ है, यह ज्ञान साधन मात्र है, इस को ज्ञेय कहना ठीक नहीं। जैसा ध्येय एक ईश्वरतत्व है, वैसा ज्ञेय भी वही होना चाहिये था। पहले ज्ञान पीछे ध्यान यही क्रम है। शास्त्रकार प्रमाण और प्रमेय-ऐसाही पदार्थ विभाग किया करते है। श्रवण मनन निदिध्यासन-यहभी क्रम है। तब ज्ञेय श्रीमद्रामायण कैसा बताया गया? ज्ञेय प्रश्न का तात्पर्य प्रमाण प्रश्नसे

हो तौ भी उत्तर " श्रीमद्रामायण " ही क्यों ? क्या एक श्रीमद्रामायण ही प्रमाण है ? प्रधान प्रमाण तो वेद है, पश्चात् उपबृंहण श्रीरामायण । प्रश्नकर्ताका अभिप्राय " ज्ञेय " शब्दसे प्रमाण लेनेका नहीं मालुम होता, क्यों कि उन्होंने जो द्वितीयवार कहा है–" तो आपके ध्येय चतुर्भुज और ज्ञेयविग्रह द्विभुज है " इत्यादि, उस मे ज्ञेय शब्द विग्रह विशेषण है । अस्तु, श्रीतोताद्रि स्वामीजीने श्रीमन्नारायणको ध्येय बताया तो इसमे चतुर्भुजत्व द्विभुजत्वका प्रसंगही क्या है ! श्रीमन्नारायण ही जब श्रीरामरूपसे अवतीर्ण हुए हैं, श्रीमन्नारायण और श्रीराममे भेदही नही है तो, उनका ध्यान शास्त्रोक्त रीतिसे दोनों आकारोंमे हो सकता है । परम हंसजीके वास्ते कोई नवीन शास्त्र तो बनाही नहीं है । शास्त्रमे श्रीरामचन्द्र भगवानके दो तरहके आकार बताये गये है । द्विभुजरूपके विषयमे प्रमाण देनेकी आवश्यकता ही नही है । चतुर्भुज रूपके विषयमेही प्रमाण चाहता है । वृद्धहारीत स्मृतिके ६ ठें अध्यायमें श्रीराममन्त्र विधान प्रकरणमे श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान इस प्रकार लिखा है–

" पीनवृत्तायतस्निग्ध महाबाहुचतुष्टयम् ।
विशालवक्षसं रक्तहस्तपादतलं शुभम् " ॥२६४॥

इस श्लोकमे स्पष्टही बाहुचतुष्टयका कथन है । इसके आगे—

" शङ्खचक्रधनुर्वाणपाणिनं सुमहाबलम् ।
लक्ष्मणानुचरं रामं ध्यात्वा राक्षसनाशनम्" २९३

इस श्लोकमें तो पीछेके दो भुजाओंमें शङ्ख चक्र और आगे के दो भुजाओंमें धनुर्बाण धारण किये हुए श्रीरामचन्द्र-जीका ध्यान विहित है ।

श्रीरामचन्द्रकी मूर्तिके लक्षण कहते हुए पाद्म संहिता मे द्विभुज और चतुर्भुज दोनों का विधान किया है—

" रामस्य राघवस्याथ लक्षणं वक्ष्यतेऽधुना॥६०॥
त्रिभङ्गं द्विभुजं रम्यं श्यामवर्णं किरीटिनम् ।
श्रीवत्साङ्कं प्रसन्नाभं यद्वा रामं चतुर्भुजम् ॥६१॥
[क्रियापद—अध्याय १७]

अब विचारना चाहिये कि जब श्रीरामचन्द्रजीका द्वि-भुज तथा चतुर्भुज दोनों प्रकारसे ध्यान शास्त्र सम्मत हैं, तब अपनी इच्छासे जो रूप जिसको प्रिय लगे उसीका वह ध्यान कर सकता है, तो तुम्हारा ध्येय हमारा ध्येय यह भेद क्यों ? ' श्रीरामचन्द्र ' कोई दिव्य विग्रह मात्रका नाम तो नही है, किन्तु विग्रह विशिष्ट दिव्यात्म स्वरूपका, वह दिव्यात्म स्वरूप एक है तो विग्रहाकार भेदमात्रसे ध्येयभेद नही हो सकता । ध्येय तो सबके लक्ष्मी नारायणही हैं, उनको कोई सीतारामरूपसे, और कोई रुक्मिणी कृष्णरूपसे ध्यान करे, तो इसमे क्या आपत्ति है । श्रीवैष्णवोंके लिये भी श्रीरामरूपका

ध्यान प्रतिदिन विहित हैं। पराशर स्मृति उत्तर खण्ड षष्ठाध्यायमे श्रीवैष्णवोंके नित्यकर्म विधान प्रकरणमें प्रातःकाल जो ध्यान विहित है, उसमे श्रीवैकुण्ठनाथके ध्यानके पश्चात वासुदेवादिव्यूह स्वरूप ध्यान कहकर—

" नृसिंहरामविभवविग्रहानपिचिन्तयेत् ॥६७॥ "

इस श्लोक मे श्रीराममूर्ति का भी ध्यान विहित है। इस से यह मालुम हो गया होगा कि श्रीरामानन्दीय ही श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करते है, यह बात नही, श्रीरामानुजीय भी करते है। और श्रीरामचन्द्रजी का द्विभुजरूप का ध्यान श्रीरामानन्दीय ही करते हों श्रीरामानुजीय नही करते हों, सोभी नही, वे भी करते है। वास्तव मे देखा जाय तो श्रीरामानुज सम्प्रदायी प्रायः द्विभुजरूप का ही आदर करते है, यह बात द्राविड देशीय दिव्य देशों मे जाकर देखने से स्पष्ट हो जायगा। प्रायः सभी दिव्य देशोंमे श्रीरामचन्द्रजी की मूर्ति है, और वह द्विभुज ही है।

इस से यह सिद्ध हुआ कि श्रीराम ध्यान के विषय मे श्रीरामानन्दीय और श्रीरामानुजीयों मे कोई मतभेद नहीं है, इतना तो अवश्य है कि श्रीरामानन्दीय श्रीरामरूप मात्र का आदर करते है, श्रीरामानुजीय अन्य भगवद्रूपों का भी।

रहस्योद्घाटनकार ने श्रीतोताद्रिस्वामीजी के प्रश्नोत्तर से श्रीरामानन्दीयों के हृदयोंमे जो श्रीरामानुज सम्प्रदाय से भिन्नता दिखा कर अनादर कराने का यत्न किया है वह निष्फल है ।

प्रपप्पन्नामृतके आधारपर आक्षेप.

रहस्योद्घाटनकारने प्रपन्नामृत नामक संस्कृतभाषा निबद्ध एक अर्वाचीन ग्रन्थमे से कुछ आक्षेपकी बातें उध्दृत कर, उस दोषको श्रीवैष्णव सम्प्रदायके आचार्योंपर आरोपित किया है । आगे हम क्रमसे उन विषयोंपर विचार करेंगे । उसके पहले हम यह बता देना चाहते है कि श्रीवैष्णव सम्प्रदायमे प्रपन्नामृत ग्रन्थका कुछभी मान्यता नही है । दिव्यसूरि और आचार्योंके इतिहास तो " भार्गवोपपुराण "· " दिव्यसूरि चरित " " गुरुपरम्परा प्रभाव " " यतीन्द्र प्रवण प्रभाव " " श्रीरामानुज दिव्यचरित " इत्यादि प्राचीन ग्रन्थ ही माने जाते है । द्राविड देशमें प्रपन्नामृत नामको ही बहुत कम मनुष्य जानते है। अतएव " प्रपन्नामृत " मे जो कुछ वर्णित है, उसके जिम्मेदार पूर्वाचार्य नही हो सक्ते, अतएवच प्रपन्नामृतोक्त विषयोंको लेकर जो आक्षेप किये गये हैं उनका समाधान करना ही अनावश्यक है, फिर भी हम यथोचित समाधान आगे लिखते है ।

प्रपन्नामृत अध्याय ११५ के—

" अयोध्या वासिना मेषां लोकं सान्तानिकं पुरा । प्रददौ कृपया रामस्तेषामपि परं प-

दम् । प्रदातु कामः स तदा वेदान्तिन् कूर-राडभूत् "।

इन श्लोकोंको उद्धृत कर, रहस्योद्घाटनकार ने इनकी टीका इस प्रकार की है—

"अर्थात् पूर्वकालमे श्रीरामजीने कृपाकर अयोध्यानिवासियोंको सान्तानिकलोक प्रदान किया, परंतु उनकी इच्छा अयोध्यावासियोंको परम पद देनेकी थी, अतः कालान्तरमे उन्हें फिर जन्मलेकर कूरेश नामसे श्रीरामानुजस्वामीके शरणागत होना पड़ा। इस तरह मोक्ष प्रद नारायणमन्त्रका ग्रहण करने और मुद्रालाञ्छित होने पर उन्हें कहीं जाकर अयोध्यावासियोंको मुक्त करनेकी शक्ति हुई।"

प्रपन्नामृतके उपरोक्त श्लोकों पर विचार करनेके पहले यह बता देना उचित होगा कि श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्य आदियोंने इस विषयमें अन्यत्र क्या कहा है। सबसे पहले हम श्रीकुलशेखर आलवार के महापुरुष श्रीसूक्त (पेरुमाल तिरुमोळि) से एक गाथा उद्धृत करते हैं—

अन्रु शराशरङ्गळै वैकुन्दत्तेत्ति
यडलरचप्पक्कयेरियशुरर् तम्मै,
वेन्रिलङ्गु मणिनेडुन्दोळ् नान्गुन्तोन्र
विण्मुळ्ळडुमेदिर् वरत्तन्दाम मेवि,
[श्रीसूक्त १०, गाथा—१०]

उस दिन (श्रीवैकुण्ठ पधारने के दिन) चराचरों को वैकुण्ठ में चढाकर, महाबली सर्पमात्र के शत्रु गरुड जी पर आरूढ हो, असुरवर्ग को जीतनेवाले प्रकाशमान सुन्दर और दीर्घ चार भुजाओं से युक्त हो, परमपदवासी समस्त नित्यमुक्तगण के अगवाई मे उपस्थित होने पर निज धाम मे पहुंच कर, सिंहासन मे विराजमान होनेवाले सर्वेश्वर को "—यह इस आधी गाथा का अर्थ है। इस मे स्पष्टतया अयोध्यावासी समस्त चराचरों को वैकुण्ठ पहुंचाने की बात कही गई है।

श्रीकूरेश प्रणीत अतिमानुषस्तव मे निम्न लिखित श्लोक है—

" ये धर्ममाचरितुमभ्यसितुं च योगं
बोध्दुंच किञ्चन न जात्वधिकारभाजः।
तेपि त्वदाचरितभूतलबन्धगन्धा
द्न्धातिगाः परगतिं गमितास्तृणाद्याः ॥ ३१ ॥

इस श्लोक मे श्रीकूरनाथ कहते है कि जिनको धर्म के आचरण करने मे, योग के अभ्यास करने मे, और कुछ भी जानने मे अधिकार नही, उन तृण आदि को भी, केवल आपके विचरे हुए भूमिके सम्बन्ध मात्र से, हे राम! बन्ध से छुडा कर आपने परगति पहुंचा दिया। इस मे स्पष्ट ही श्रीकूरेशस्वामीजी ने कह दिया कि

श्रीरामचन्द्र भगवान ने अयोध्या के समस्त तृण गुल्मादि को भी परगति ही दिया ।

श्रीपराशर भट्टारक स्वामीजी ने श्रीसहस्रनाम भाष्य में " परिग्रहः " नाम के व्याख्यान मे श्रीरामावतार वृत्तान्त को लेकर यों कहा है—

" स्वसम्बन्धि पौरजानपद तत्सम्बन्धिनां तद्देवता तदा रामतरु दूर्वादेरपि परमपद प्रापणात् परितो ग्रहोऽस्येति परिग्रहः । "

अर्थात् अपने नगर तथा जनपद में रहनेवाले मनुष्य, तथा उनके सम्बन्धी, एवं उनके देवता, और उनके बगीचे के वृक्ष दूब आदिको भी परमपद देने के कारण, जिन का अङ्गीकार परितः—याने चारों तरफ है वे परिग्रह है । इस मे परमपद देनेकी ही बात है ।

जटायु महाराज को श्रीरामचन्द्रजी ने मोक्ष दिया था, इस विषय को भी श्रीकूरेशजी ने अतिमानुषस्तव मे दो श्लोकों मे कहा है—

" सीतावियोगविवशो नच तद्गतिज्ञः
प्रादास्तदा परगतिं हि कथं खगाय ॥ १७ ॥ "

श्रीकूरेशजी भगवान् से कहते है कि हे भगवन् ! एक बात मे आपसे पूछता हुं, जब आप रामावतार लेकर मनुष्यत्व का अभिनय करते हुए सीतावियोग पाकर श्रीजा-

नकीजी की गतिको न जानने के कारण दुःखित हो रहे थ, उसी समय आपने पक्षिराज जटायु को परगति कैसे दिया !

" अक्षुण्णयोगपथमग्रहतं जटायुं
तिर्यञ्चमेव बत मोक्षपदे नियोक्तुम् ।
शक्तोपि वेत्सि च यदा स तदा कथं त्वं
देवीमवाप्तुमनलो व्यथितो विचिन्वन् ॥"१८॥

इस श्लोक मे कूरेशजी भगवान् से कहते हैं कि—जटायु को तिर्यग्जाति होने पर भी मोक्ष देने को आप जब समर्थ थे तो, उसी समय श्रीजानकीजी को प्राप्त करने मे असमर्थता बताते हुए दुःखित हो रहे थे, यह कैसे ?

इन दोनों श्लोकों को पढनेवाले जान सक्ते हैं कि श्रीकूरेशजी श्रीरामचन्द्रजी को जटायु मोक्षदाता कह रहे हैं । अच्छा, अब विचार करना चाहिये कि जब श्रीरामानुज सम्प्रदायके आचार्य श्रीरामचन्द्र भगवान को मोक्ष प्रदान समर्थ कह रहे है, तब वे " अयोध्यावासियों को परमपद देने मे श्रीरामचन्द्रजी असमर्थ थे, अतएव उन को मोक्ष देने के लिये श्रीरामचन्द्रजीने कूरेशरूपसे अवतार लिया " यह कैसे लिख सक्ते हैं ! यदि यह बात निश्चित हो जाय कि श्रीरामानुज सम्प्रदाय के आचार्य ऐसा कभी नहीं लिख सक्ते, तब प्रपन्नामृत के श्लोकों का ठीक अर्थ निकल आना कठिन नहीं है ।

बंबईके श्रीवेंकटेश्वर प्रेस के छपे प्रपन्नामृत पुस्तक मे तो ऐसाही पाठ है, जैसा कि रहस्योद्घाटनकार ने लिखा है। प्राचीन लिखित पुस्तकों मे कई तरहके पाठ मिलते है। "अयोध्यावासिनामेषां" यहां "एषां" पद उपयुक्त नही है, क्यों कि "एषां" का अर्थ होता है– 'प्रत्यक्ष मे रहनेवाले इन को,' तब "तेषामपि परम्पदम्" इस मे "तेषां" का अर्थ अप्रत्यक्ष (प्रत्यक्ष मे न रहनेवाले) उनको–यह लगता नही। देखिये,–इन श्लोकों का अर्थ वर्तमान मुद्रित पाठके अनुसार यह होता है–"इन अयोध्यावासियों को श्रीरामने पहले सान्तानिक लोक कृपया दिया था, उनको भी परमपद देने की इच्छासे कूरराड् हुए"। जब अयोध्यावासियोंको "इन" शब्दसे प्रत्यक्ष मे वर्तमान बता दिया गया, तब फिर उन्हीकों 'उन" शब्दसे अप्रत्यक्ष बताना कैसे ठीक होगा। "एषां" और "तेषां" इन दोनों शब्दोंके स्थान बदल देनेसे यह अनुपपत्ति निवृत्त हो जाती है। तब पाठ इस प्रकार होगा—"अयोध्यावासिनां तेषां लोक सान्तानिकं पुरा। प्रददौ कृपया राम स्त्वेषामपि परम्पदम्॥ प्रदातुकामस्स तदा वेदान्तिन्कूरराडभूत्।" अब इसका अर्थ यह होगा—पहले अयोध्यावासी उन जीवोंको श्रीरामने कृपया सान्तानिक लोक दिया था, इनको भी परमपद देनेकी इच्छासे श्रीराम कूरराट् हुए। इसका भावार्थ यह

हुआ कि उस वक्त तो अयोध्यावासियोंको ही सान्तानिक लोक दिया था, अब तो इन अन्य जीवों को भी देनेके लिये श्रीराम कृतराट् हुए। सोपपत्तिक यह पाठ कई हस्त लिखित पुस्तकोंमे मिलेगा। एक पाठ ऐसाभी मिलता है— " अयोध्यावासिनामेषां " और " तेषां " के बदले " अयोध्यावासिनामिव "— ऐसा प्रथम पाद है, चौथा पाद तो " एषामपि " ही है। इसका अर्थ यह होगा कि पहले तो अयोध्यावासियोंको ही दिया था, अब इन अन्यजीवों को भी परमपद देनेकी इच्छासे श्रीराम कृतराट् हुए। उपरके निरूपणसे मालुम हो गया होगा कि रहस्योद्घाटनकारका रामनिन्दा दोपारोपण अनुचित है।

प्रपन्नामृत अध्याय ९४ की एक कथाके आधारपर दूसरा आक्षेप रहस्योद्घाटन कारने किया है, अर्थात् " रावण की बहन शूर्पणखा ही कृष्णावतार मे राधिका हुई, " इस कथा को लेकर उद्घाटनकार प्रपन्नामृतकार पर बहुत क्रोधित होते है, परंतु उस प्रपन्नामृत पुस्तक के उस कथा के नीचे सम्पादक ने जो नोट लगाया है, उस को देख लिया होता तो इस आक्षेपका मूल ही उखड जाता। सम्पादक ने नोट लिखा है कि यह कथा भाग कई पुस्तकों मे मिलता है, इस से छाप दिया। इस से क्या मालुम हुआ, यही कि यह पाठ कुछ पुस्तकों मे नहीं भी है। यदि इस पाठ का न होना ही सत्य है तो फिर कुछ बात ही नहीं रहती।

अच्छा, अब हम इस कथा भाग को थोडी देर के लिये वास्तविक मान लें तो यह क्या प्रपन्ना मृतकार की गढी हुई कथा कहना होगा ? भला प्रपन्नामृत कार को क्या आवश्यकता हुई कि यह कल्पना वे करते । सुनी हुई कथा उन्होंने लिख दी हो तो यह दोष किस पर आवेगा ? यह सब देव रहस्य है, लोक कल्याणार्थ देवताओं को नाना प्रकार के कार्य करने पडते है, उन का वर्णन ग्रन्थोंमे किया जाता है । तब ग्रन्थ कर्ता के उपर निन्दा का दोषारोपण करना अयोग्य होगा । नही तो व्यास भगवान् ईश्वर के भारी निन्दक ठहरेंगे । श्रीमन्नारायण को व्यास जी ने वेद निन्दक बुद्ध के रूप मे खडा किया है, मच्छी बनाया है, कछुवा बनाया है, सूअर बनाया है—इत्यादि परश्शत दोष व्यास के उपर ठहरेंगे । क्या जाने किस कारण से शूर्पणखा बनना पडा हो ! राक्षस असुर आदि—नाम मात्र ही बुरा नही । भक्तशिरोमणि प्रल्हाद असुर ही है, बिभीषण—राक्षस योनिके ही है । श्रीवाल्मीकीजीने श्रीहनुमान को बन्दर बना दिया, उनके उपर भी दोष देना ही होगा । श्रीकृष्ण तो स्वयंही " प्रल्हादश्चास्मि दैत्यानाम् " कहते हुए दैत्य बनते है ।

अस्तु, प्रथम तो यह कथाभाग ही प्रक्षिप्त है, यदि वास्तविक भी हो तो प्रपन्नामृतकार का कुछ दोष नहीं है ।

प्रपन्नामृतके अध्याय ९४ मे शिवनारायणकी कथा है,

उसमें कहा गया है कि विप्रनारायण श्रीकृष्ण का अवतार है, और देवदेवी जन्मान्तर प्राप्त कुब्जा है, इस पर रहस्योद्घाटनकार का दो आक्षेप है। भगवानके चौबीसही अवतार हैं, यह पचीसवाँ अवतार कहांसे आया? यह पहला आक्षेप है। श्रीकृष्णने कुब्जाको मोक्ष दे दिया था, तब उनका जन्मान्तर कैसे? यह दूसरा आक्षेप है।

इसपर हमारा कहना यह है कि जब श्रीकृष्ण भगवान्ने स्वयंही-" बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि " कहा है, तब चौबीसही अवतार हैं-यह नियम किसने बना दिया! भगवानके अवतार कई प्रकारके होते हैं, कुछ साक्षात् अवतार हैं, और कुछ आवेशावतार। ऐसे भगवदवतार अनन्त कहे जाते हैं। कुब्जा को भगवान्ने कृष्णावतारमें मुक्ति नहीं दिया, मुक्ति तो कुब्जाने मांगाही नहीं। श्रीभागवतमें स्पष्टही इसका उल्लेख है—

" सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम्।
अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेद् मयाचत ॥ ९ ॥
आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया।
रमस्व.नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥ १० ॥
तस्यै कामवरं दत्वा मानयित्वाच मानदः।
सहोद्धवेन सर्वेशस्स्वधामागात्समृद्धिमत् ॥ ११ ॥
दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
याचृणीत मनोग्राह्यमसत्वात्कुमनीष्यसौ ॥ १२ ॥

[श्रीभागवत स्कं ब १० अ. ४८.]

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि उस दुर्भाग्यशाली कुब्जाने केवल चन्दन अर्पण करनेसे ही, दुष्प्राप उस वैकुण्ठपतिको पाकर भी, यह याचना की कि 'हे कमलनयन! हे स्वामिन्! मैं आपका सहवास त्यागनेमें असमर्थ हूं, कुछ दिन मेरे साथ रहकर रमण करिये।' तब मानद श्रीकृष्ण भगवान्, उसको कामरूपी वर दे; उद्धवजीके साथ स्वधाम पधारे। जिस कुब्जाने कठिनतासे आराधित होनेवाले सर्वेश्वरेश्वर श्रीविष्णुको प्रसन्न करके भी, मनोग्राह्य विषयसुखको ही तुच्छ बुद्धि होनेके कारण वरण किया, यह कुब्जा कुबुद्धि है।

उपरोक्त श्लोकोंसे यह स्पष्ट होता है कि कुब्जाने विषय सुखही मांगा, और भगवानने वही दिया। कुब्जाका यह कार्य महर्षिको भी पसंद नहीं आया, तभी उन्होंने उस की निन्दाकी। यहां मोक्ष देनेका प्रसंगही कहां है?

श्रीरामानुज सम्प्रदाय श्रीसम्प्रदाय नहीं है !

इस आक्षेपका उत्तर !
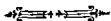
श्रीमन्नारायणाष्टाक्षरका प्रथम प्रवर्तक श्रीमन्नारायण ने बदरिकाश्रममे नरको अष्टाक्षरका उपदेश दिया था, यह बात श्रीरामानुज सम्प्रदायके ग्रन्थोंमे लिखी हुई है; इस पर रहस्योद्‌घाटनकार आक्षेप करते है कि जब श्रीमन्नारायणने नरको अष्टाक्षरका उपदेश दिया तो, नर ही अष्टाक्षरका प्रवर्तक हुए, श्रीजी नहीं, अष्टाक्षर ही प्रधान मन्त्र है, उसका प्रवर्तक जो है वे ही सम्प्रदायका प्रवर्तक होना चाहिये, अत एव श्रीरामानुज सम्प्रदाय श्री सम्प्रदाय नहीं, किन्तु नर सम्प्रदाय होना चाहिये ।

इस पर हम कहना चाहते है कि यद्यपि श्रीमन्नारायणाष्टाक्षरका भूमण्डलमे प्रथमोपदेश नरको मिला, अत एव नर ही प्रथम प्रवर्तक है, इस मे सन्देह नहीं । परन्तु हम श्रीरामानुजीयोंको श्रीमदष्टाक्षरकी प्राप्ति जिस परम्परासे मिली है, उसके मूलमे श्रीलक्ष्मी जी है । समय भेदसे एक ही धर्म व मन्त्र वा शास्त्रका प्रवर्तक भिन्न भिन्न होते है । दृष्टान्तमे अर्जुनके प्रति श्रीकृष्णोपदिष्ट योग को ले सकते है, और नारदके प्रति सङ्कर्षणोपदिष्ट भागवत धर्मको ले सकते है । भगवद्गीतामे श्रीकृष्णने कहा है—

" इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत ॥ १ ॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टःपरन्तप ॥ २ ॥
स एवायं मया तेद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ॥ ३ ॥
[भ. गी. अ. ४.]

अर्थात् इसी योगका पहले हमने विवस्वान्‌को उपदेश दिया था, विवस्वान्‌ने मनुको दिया, मनुने इक्ष्वाकु को दिया था, इस प्रकार परम्पराप्राप्त इस योगको राजर्षि लोग जानते थे, वह इस बीचके महान् कालमे नष्ट होगया, उसी को मैने अब तुमको कहा है। इसमे स्पष्ट है कि योगकी एक परम्परा पहले थी, वह नष्ट हो गई, तब भगवानने द्वितीयबार अर्जुन को उपदेश दिया। महाभारत शान्ति पर्वमे सात्वत धर्मका कई बार आविर्भाव और तिरोभाव बताये गये है, उसकी कई परम्परायें उसमे सिद्ध होती है। ऐसे ही अष्टाक्षरके विषयमे भी जानना चाहिये। प्रथम प्रवर्तन तो अवश्यही श्रीमन्नारायणने नरको दे, कराया था, परंतु श्रीमहालक्ष्मीजीको भी अष्टाक्षरका उपदेश भगवाने दिया है। श्रीमहालक्ष्मीने श्रीविष्वक्सेन जीको दिया, फिर वह श्रीशठकोपमुनेन प्रवर्तित हो श्रीरामानुजीयोंको प्राप्त हुआ है।

श्रीमहालक्ष्मीजीने श्रीमन्नारायण से मन्त्रराज श्रीमदष्टाक्षर का उपदेश लिया था, यह विषय बृहद्ब्रह्म संहिता प्रथमपाद द्वितीयाध्याय मे कहा गया है—

" ओमित्युवाच सा देवी चक्रशङ्खभुजद्वया।
प्रयोजनान्तरंहित्वा मन्त्रराजमथा ददौ ॥१२१॥ "

अर्थात् श्रीमहालक्ष्मीजी ने 'तथास्तु' कह कर शंख चक्राङ्कित भुजद्वया हो अनन्य प्रयोजन भाव से मन्त्रराज (अष्टाक्षर) का ग्रहण किया।

द्वयमन्त्र का तो प्रथम प्रवर्तिका ही श्रीमहालक्ष्मी है। इस प्रकार श्रीमहालक्ष्मीजी श्रीरामानुजीय गुरु परम्परा मे श्रीमन्नारायण के पश्चात् स्थान पाती है। अतएव श्रीरामानुज सम्प्रदाय श्रीसम्प्रदाय कहलाता है।

एक नवीन कल्पना

का

समाधान ।

रहस्योद्घाटनकार कल्पना करते है कि वर्तमान श्रीरामानुज सम्प्रदायावलम्बियों के आचार्य महापूर्ण के शिष्य श्रीरामानुज श्रीरामानन्दियों के आचार्य नही, वह रामानुज दूसरे है, वे श्रीशङ्कराचार्य के समकालीन थे, वे श्रीराममन्त्र जानते थे, रामानुजीयों ने उस रामानुज को शूद्र बना डाला, उस प्रथम रामानुज के भाष्य मे द्वितीय रामानुज ने संशोधन कर दिया, इत्यादि । उस प्रथम रामानुज के सद्भाव मे और उनके श्रीराममन्त्राभिज्ञता मे प्रपन्नामृत के अध्याय १२६ के निम्न लिखित श्लोक प्रमाण माने गये है—

"पुरा रामानुजः कश्चिद्विबुधः पादजोमहान् ।
रामभक्तो महातेजाः साकेतनगरंययौ ॥ ३७ ॥
संसेव्य राघवं तत्र सीतालक्ष्मणसंयुतम् ।
रामरत्नत्रयं प्राप श्रीराघवकटाक्षतः ॥ ३८ ॥
प्रददौ भक्ति भावेन मतद्रत्नत्रयं महत् ।
वेङ्कटेशाय वरदराजायाथच रङ्गिणे ॥ ३९ ॥
लक्ष्मीकुमारताताय ददौवरदवल्लभा ।
श्रीरामरत्नं कृपया स्यमन्तक निभंहि तत् ॥ ४० ॥"

अर्थात् चतुर्थ वर्णज रामानुज नामक एक विद्वान् राम भक्त तेजस्वी पुरुष पहले थे, उन्होंने अयोध्या जा श्रीराम का दर्शन किया, और श्रीराम के कटाक्ष से " रामरत्न " नामक तीन रत्न पाया, उनमें से एक एक श्रीवेङ्कटेश श्रीवरदराज और श्रीरंगनाथ को अर्पण किया था, श्रीवरद-वल्लभा ने श्रीलक्ष्मी कुमार ताताचार्य को वह रामरत्न दिया, वह रामरत्न स्यमन्तक मणि के समान है। इन श्लोकों में रामानुज नामक एक रामभक्त का पूर्व में अस्तित्व अवश्य ही उल्लिखित है। परन्तु " पुरा " शब्दसे कौनसा काल लेना चाहिये इसका निश्चित प्रमाण नहीं मिलता, यतीन्द्र प्रवण प्रभावमें " अयोध्या रामानुजदास " नामक एक व्यक्तिका उल्लेख है, कदाचित् यह रामानुज वही हों, वह तो श्रीवरवरमुनि स्वामीजीके समकालीन हैं। उस कल्पित रामानुजके बनाये हुए भाष्यके सद्भावमें कुछभी प्रमाण नहीं। यदि भाष्य प्रणेता कोई रामानुज शङ्करके समकालमें रहे होते और विशिष्टा द्वैती रहे होते तो क्या उनका नाम मात्रभी श्रीरामानुज सम्प्रदायके किसी भी ग्रन्थ में लिया नहीं जाता। श्रीरामानुज स्वामीजीके पूर्व भाष्य अवश्य था, वह " द्रमिडभाष्य " नामसे प्रसिद्ध था, उसके कर्ता श्रीद्रमिडाचार्य थे। उसका उल्लेख सबही प्राचीनग्रन्थोंसे प्रायः आता है। प्रपन्नामृतके उपर उदाहृत श्लोकोंमे श्रीरामरत्न

नामसे जिसका उल्लेख है वहतो एक मणि मात्र है, स्यमन्तक मणिके समान उसका प्रभावथा, वह श्रीराममन्त्र नहीं। प्रपन्नामृतो लिखित रामानुज बहुत करके यतीन्द्र प्रवण प्रभावो लिखित रामानुज ही होना चाहिये। प्रपन्नामृतके इन श्लोकोंके आधार पर श्रीरामानुज स्वामीजीके पूर्व एक अन्य रामानुज के सद्भावकी कल्पना करना, उनको भाष्यकर्ता बताना प्रसिद्ध श्रीरामानुज स्वामीजीको उस भाष्यका प्रवचनकर्ता मात्र कहना, कैसी अनर्थ की बात हुई है, पाठक समझेंगे। आज तक कितने ही इतिहास लेखक हुए हैं, किसीने भी श्रीशङ्करके कालमें एक रामानुजके रहनेकी बात नहीं लिखी है। इतने दिनों बाद रहस्योद्घाटनकार ही को यह कल्पना सूझी है।

उपसंहार ।

हमने इस छोटेसे पुस्तकमे रहस्योद्घाटनकारके किये हुए सभी आक्षेपोंके यथोचित समाधान लिखा है, आशा है, प्रमाणपरतन्त्र सज्जनोंको इतनेसे ही सन्तोष होगा । इतने पर भी कोई दुराग्रहवश अपनी उच्छृङ्खल प्रवृत्ति को छोडना न चाहे, और श्रीरामानुज परम्पराको छोडना ही चाहे, तो उसके लिये हमारे पास कोई इलाज नही है । ऐसे कुछ लोग सम्प्रदायसे अलग हो जायँ तो भी अन्य निष्पक्षपाती श्रीरामानन्दीय वैष्णवगण चिरागत परम्पराको न छोडेंगे, ऐसी हमारी धारणा है । इति ।